धर्मायण

मूल्य : 20 रुपये

अंक 98

भाद्रपद, 2077 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

श्रीकृष्ण-भक्ति विशेषांक

Courtesy: Wikimedia Commons, the free media repository.

महावीर मन्दिर में दि. 30 जुलाई को प्रारम्भ झूलन-उत्सव की झाँकी। लॉकडाउन के दिनों में भी मन्दिर में रह रहे पुजारियों ने भक्तिभाव से झाँकी सजायी।

धर्मायण

Title Code- BIHHIN00719

आलेख-सूची

1. **रासेश्वर से योगेश्वर तक की व्यापकता** –भवनाथ झा 3
2. **पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्ण (भारतीय सांस्कृतिक आध्यात्मिकता)**
   डा. धीरेन्द्र झा 4
3. **भाद्रपद में कृष्णावतरण का रहस्य**
   डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य 8
4. **श्रीकृष्णस्तुतिः** (संस्कृत स्तोत्र) श्री रामकिंकर उपाध्याय 13
5. **पूर्वोत्तर भारत की कृष्ण-भक्ति धारा में सामाजिक समरसता के सिद्धान्त**
   आचार्य किशोर कुणाल 14
6. **श्रीकृष्ण की गोलोक-सहचारिणी राधा**
   श्रीभागवतानन्द गुरु 30
7. **श्रीकृष्णजन्म की कथा**
   पं. लल्लू लाल कृत **'प्रेमसागर'** (1774 ई.)से 35
8. **श्रीकृष्ण-क्रान्ति** श्री गंगा पीताम्बर शर्मा 'श्यामहृदय' 44
9. **व्रज-क्षेत्र की कृष्णाष्टमी** डा. परेश सक्सेना 54
10. **कृष्णाष्टमी की एक विशिष्ट परम्परा**
    श्री रामकिंकर उपाध्याय 56
11. **बिहार के लोकगीतों में श्रीकृष्ण-भक्तिधारा**
    डा. काशीनाथ मिश्र 58
11. **शिवतत्त्व** श्री अरुण कुमार उपाध्याय 66
12. **अध्यात्म-रामायण से राम-कथा –**
    आचार्य सीताराम चतुर्वेदी की लेखनी से 72

मातृभूमि वन्दना, व्रतपर्व, रामावत संगत से जुड़िये, महावीर मन्दिर में श्रीकृष्णाष्टमी का आयोजन 78

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक : 98

भाद्रपद, 2077 वि. सं

4 अगस्त-2 सितम्बर,

2020 ई.

प्रधान सम्पादक

आचार्य किशोर कुणाल

सम्पादक

भवनाथ झा

पत्राचार :

महावीर मन्दिर,

पटना रेलवे जंक्शन के सामने

पटना- 800001, बिहार

फोन : 0612-2223798

मोबाइल : 9334468400 (WhatsApp)

E-mail: mahavirmandir@gmail.com

Web: www.mahavirmandirpatna.org

www.m.mahavirmandirpatna.org

मूल्य : बीस रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक सख्या 97, आषाढ़, 2077 वि.सं.)

धर्मायण का नाग-पूजा अंक पढ़ा। समग्र रूप से एक विषय पर इतने गम्भीर लेखों को एक स्थान पर पाकर बहुत अच्छा लगा। आरम्भ से ही मैं इस पत्रिका का पाठक रहा हूँ। इसे बेवसाइट पर पाकर बहुत खुशी हुई, वरना यहाँ मैक्सिको में रहकर पत्रिका नहीं पढ पाता। सम्पादक को बहुत बधाई। इसी प्रकार से विषय केन्द्रित अंक निकलता रहे तो सारे अंक स्थायी महत्त्व के हो जायेंगे।

देवेन्द्र सिंह, सॉफ्टवेयर इंजीनियर, सेंट्रो, मौंटेरी, मैक्सिको।

धर्मायण हिंदी जगत् में एक खास मुकाम बनाए हुए है। धार्मिक, संस्कृति, साहित्य, और कला, जैसे विषयों पर सुरुचिपूर्ण आध्यात्मिक सामग्री की प्रभावी प्रस्तुति इसकी पहचान है। नाग पूजा अंक ज्ञानवर्धक है। धर्मायण' का अगला अंक कृष्ण-भक्ति विशेषांक का इंतजार रहेगा। पत्रिका में धार्मिक सरोकार और स्वस्थ ज्ञानवर्धक आध्यात्मिक साहित्य की सुगंध के साथ-साथ अंतर्मन को बेहतर बनाने का हौसला है। इतनी अच्छी ज्ञानवर्धक आध्यात्मिक साहित्य के लिए संपादक-मंडल का आभार। धर्मायण नेट पर आ गई है यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई । धर्म, सेवा, और पूजा मन को शुद्धिकरण की ओर ले जाते हैं, जो सभी आध्यात्मिक प्रयासों का सार है । बहुत ही अद्भुत पत्रिका है ।

अमिताभ मिश्र (बेवसाइट के पृष्ठ पर प्रतिक्रिया।)

आपको यह अंक कैसा लगा?इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल mahavirmandir@gmail.com **पर अथवा** whatsApp. **सं.** +91 9334468400 **पर भेज सकते हैं।**

'धर्मायण' का अगला अंक वाल्मीकि-रामायण विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। वाल्मीकि रामायण सम्पूर्ण भारत में प्रचलित है, जिसके विभिन्न स्थानीय संस्करण हैं। सभी संस्करणों में कुछ न कुछ अंश परवर्ती कवियों के द्वारा जोड़े गये हैं। रामायण के विभिन्न संस्करणों के स्वरूप पर केन्द्रित यह अंक प्रस्तावित है।

धर्मायण का नया अंक आदि से अंत तक पढ गया। नाग देवता और भगवान् शिव पर इतनी प्रामाणिक सामग्री के संकलन के लिए सम्पादक को बहुत बहुत धन्यवाद। इस प्रकार की पत्रिका के लिए यह अच्छी बात है कि सम्पादक एक विषय पर स्वयं अवधारणा बनाकर उस क्षेत्र के विशिष्ट विद्वानों का आलेख संकलित करते हैं। यह पत्रिका से ऊपर उठकर एक शोधग्रन्थ ही बन गया है। शूर्पणखा के प्रसंग पर इतना प्रामाणिक अध्ययन तथा विद्रोहियों के द्वारा उठाये गये सबालों का इतना सुन्दर जबाब पढकर गद्गद हो गया हूँ। आचार्य कुणालजी को मेरा नमन। सम्पादक ने पूरे महींने को ध्यान में रखकर घरी पर्व का भी जो परिचय संकलित किया है, वह अद्भुत है। लोक-पर्वों पर विशेष संकलन की आवश्यकता को यह पूरा करता है।

उज्ज्वल कुमार देव, विश्रामपुर नेपाल

सम्पादकीय

रासेश्वर से योगेश्वर तक की व्यापकता

–भवनाथ झा

सनातन धर्म के रत्नभूत भगवान् श्रीकृष्ण का अवतरण भी पृथ्वी को भारमुक्त करने हेतु ही हुआ था। उन्होंने इस माध्यम से "तदात्मानं सृजाम्यहम्" की अपनी प्रतिज्ञा पूरी की थी। आठ वर्ष की अवस्था में कंस का वध किया। उससे पहले ही अपनी बाललीला समाप्त की। इसके बाद सान्दीपनि मुनि के आश्रम में शिक्षा पायी और द्वारका का शासन सँभाला। महाभारत के युद्ध में पहले शान्ति–स्थापना का भरपूर प्रयास किया; किन्तु सफलता नहीं मिलने पर युद्ध होने की स्थिति में योगेश्वर की भूमिका निबाते हुए अर्जुन को 700 श्लोकों की गीता का उपदेश किया, जो सभी उपनिषदों का सारतत्त्व बन कर भारतीय चेतना को उद्‌बुद्ध करती रही। गोकुल के रासेश्वर श्रीकृष्ण एवं महाभारत के योगेश्वर श्रीकृष्ण के बीच जो महान् विविधता है, वह श्रीकृष्ण को एक विशाल पर्वत के समान बना देता है, जिस पर्वत की दोनों ओर की तलहटी को कोई व्यक्ति एक साथ दर्शन करने में असमर्थ है। यहीं श्रीकृष्ण का विराट् रूप है, जिसका दर्शन केवल अर्जुन ने किया था।

19वीं शती के अन्त में कृष्ण के रासेश्वर के स्वरूप पर अंगरेज ईसाइयों ने काफी अपवाह फैलाया और भारतीय जनमानस को दिग्भ्रान्त किया। कमोवेश आजतक वह भ्रान्ति लोगों में विद्यमान है, जो गोपियों के साथ उनके सम्बन्ध में अश्लीलता की बात करते है। जिन्होंने भागवत का अध्ययन नहीं किया है वे आज भी श्रीकृष्ण के रासेश्वर रूप पर मौन धारण कर योगेश्वर के स्वरूप पर केन्द्रित हो जाते हैं। लेकिन भागवतकार एक ही सर्ग में दो बार लिखते हैं कि गोवर्द्धन–लीला के समय श्रीकृष्ण केवल सात वर्ष थे।

यः सप्तहायनो बालः करैणेकेन लीलया।
कथं बिभ्रद् गिरिवरं पुष्करं गजराडिव॥3॥
क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम्।
ततो नो जायते शंका वरजनाथ तवात्मजे॥14॥

मुरली बजाते, गीत–गाते सज–धज कर नाचते सात वर्ष के बालक के साथ विवाहिता, प्रौढ़ा गोपयुवतियों की रासलीला में क्या मर्यादा होगी, इसका प्रत्यक्षीकरण तो वे ही कर सकते हैं, जिनके मन में कोई कुण्ठा नहीं है। दरअसल यौनकुण्ठा हमारे मन में फैलती गयी है। श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण लीला को हमारे प्राचीन सन्तों और ऋषियों की दृष्टि से देखने की जरूरत है।

सन् 1889 में जब जॉन एम. रॉबर्टसन ने 'क्राइस्ट एण्ड कृष्ण' नामक पुस्तक लिखी तो उनका उद्देश्य था कि कृष्णकथा के सहारे ईसाइयत का प्रचार करें और महाभारतयुद्ध का काल भी अर्वाचीनतर सिद्ध करें। उस समय तक 634 ई. का ऐहौल शिलालेख, जिसमें महाभारतयुद्ध का काल भी लिखित है, प्रकाश में नहीं आया था तो इतिहासकारों ने इसपर चिन्तन आरम्भ किया, पर शिलालेखीय प्रमाण मिलने के बाद चुप हुए। लेकिन आज भी ऐसे अपवाह फैलानेवालों की कमी नहीं है, जो पूर्व में खण्डित किये गये तथ्यों को फिर से उठाकर लोगों को भ्रान्त कर रहे हैं। हमें उन दुष्प्रचारों को समझकर अपनी संस्कृति की गहरी जड़ों को पहचानना होगा। आज भी विधर्मी मूल कथाओं में तोड़–मरोड़ कर प्रचारित कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में हमें अपने मूल–ग्रन्थों का अध्ययन करना होगा, हमें लोक–परम्परा में झाँककर देखना होगा। कुछ इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रस्तुत है 'धर्मायण' का यह श्रीकृष्ण–भक्ति विशेषांक।

॥ जय श्रीकृष्ण! कृष्णं वन्दे जगद्‌गुरुम् ॥

पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्ण

(भारतीय सांस्कृतिक आध्यात्मिकता)

डा. धीरेन्द्र झा*

भारतीय परम्परा का यह उदात्त पक्ष है कि हम जहाँ जिसकी बात करते हैं, वहाँ उन्हें प्रधान अथ च पूर्ण मान लेते हैं। यह इस बात का संकेत करता है कि जहाँ-जहाँ देवत्व है, वहाँ पूर्णता है। अतः कृष्ण का प्रसंग हो तो वहाँ वे ही परात्पर ब्रह्म हैं, शिवोपासना में शिव ब्रह्म है, अपने-अपने प्रसङ्ग में सभी देवता परब्रह्म हैं, पूर्ण हैं। वस्तुतः हम उसी पूर्ण की उपासना भिन्न-भिन्न शब्दों में करते हैं। वायु का कौन-सा हिस्सा हमारे लिए प्राण है, इसे कौन जाने!

हमारी परम्परा भक्ति व उपासना का अत्यधिक महत्त्व देती है। यहाँ धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष से भी श्रेष्ठ स्थान भक्ति को दिया गया है श्रीरामानुजादि भाष्यकार कहते हैं-

धर्मार्थकाममोक्षाणां ज्ञानवैराग्ययोरपि।
अन्तःकरणशुद्धैश्च भक्तिः परमसाधनम्॥

श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है-

भक्त्या माभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः॥

भारतवर्ष अध्यात्म एवं दुनिया के सभी धर्मों का मूल उत्पत्तिस्थल है। वेद सभी धर्मो का मूल है-

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्॥

भारतवर्ष में 15वीं शताब्दी में धर्म की धारा को प्रवर्तत हुआ जिसमें रामभक्ति की धारा गोस्वामी तुलसीदास व कृष्णभक्ति की रसधारा सुरदास, मीरा रसखान, दादू आदि मनीषियों ने प्रवाहित की। वहीं कबीर ने निर्गुण का प्रचार किया। हजारों-हजार मत पन्थ सम्प्रदायों की जन्मभूमि आर्यावर्त की पुण्यभूमि में जन्म लेने को देवता भी लालायित रहते है। इस पुण्यभूमि, धर्मभूमि, आर्यभूमि और आध्यात्मभूमि के बारे में कहा गया है कि-

गायन्ति देवाः किल गीतिकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूता
भवन्ति भूयाः पुरुषाः सुरत्वात्।

मानव ही नहीं, अपितु ईश्वर भी मत्स्य, कूर्म शूकरादि रूपों में भारतभूमि पर जन्म लेकर अपने आपको धन्य मानते है। 'पद्मपुराण' में ईश्वर श्रीविष्णु के इन दशावतारों का उल्लेख मिलता है-

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किश्च ते दश॥

भगवान के इन दशावतारों में से श्रीमदभागवत के मतानुसार नौ भगवान के अंशावतार है, इनमें से केवल श्रीकृष्ण ही भगवान के पूर्णावतार है-

वनजौ वनजौ खर्वस्त्रिरामाः सकृपोऽपः।
अवतारा दशैवेते कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥

अर्थात् भगवान के मत्स्य कच्छप, वराह-नृसिंह वामन, परशुराम दाशरथी राम व बलराम बुद्ध कल्कि

*राष्ट्रीय संयोजक (संस्कृत शिक्षा) विद्याभारती, निराला नगर, लखनऊ।

ये दशावतार थे, किन्तु इनमें भगवान् कृष्ण ही सोलह कलाओं से पूर्ण अवतार थे। क्योंकि क्षरपुरुष में अव्यय पुरुष की जो कलाएँ ज्ञात या दृष्टिगत होती हैं, वे ही अवतार है। उसका वाचक 'आविर्भाव' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है और उसी जगद्व्यापी विराट् रूप को ही भागवत में पहला अवतार बताया गया है- एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्।'

उस परमात्मा का रूप सत्य है जो तीनों कालों में सब देशों में सब दशाओं में अबाधित रहता है। यह सत्य ही जगत् में नियति रूप में स्थिर रखनेवाली शक्ति जिसमें चेतना भी अनुस्यूत है 'अन्तर्यामी नियति या सत्य शब्द से अभिहित की जाती है। यह सत्-चित आनन्द, सत्ता, विभूति नाम रूप व कर्म-ईश्वर के इन सभी विश्वचर रूपे को 'प्रतिष्ठा वै सत्यम्', 'नामरूपे सत्यम्' इत्यादि श्रुतियों में 'सत्य' शब्द से अभिहित किया गया है यथा-

यः सर्वज्ञः सर्वविदः यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादेतत् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते॥

इस श्रुति में सर्वज्ञ पर पुरुष अव्यय से इन्हीं तीन विश्वचर रूपों की उत्पत्ति बतायी गई है। विश्वातीत रूपों से विश्वचर रूपों से विश्वचर रूपों की उत्पत्ति हुई। विश्वातीतरूपों का विश्वचर रूप से ही अवतार की उत्पत्ति होती है। श्रुति में ब्रह्म नाम प्रतिष्ठा का और अन्न नाम यज्ञ का है। इन तीनों उपर्युक्त सत्यों का भी सत्य परमात्मा है। श्रीमद्भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण की गर्भस्तुति करते हुए देवताओं ने कहा है-

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यामृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥

अर्थात् जीव के आवरण भूतात्मा विज्ञानात्मा महानात्मा सूत्रात्मा का विकास जीव साधारण आवरण से हटकर अव्ययात्मा की कलाएँ जिनमें आर्विभूत दिखाई पड़े, उन्हें विशेष रूप से अवतार माना जाता है और जहाँ पूर्ण रूप से इन सभी शक्तियों का विकास हो पूर्ण रूप से अव्ययात्मा की सब कलाएँ प्रकट हो; वे पूर्णावतार व साक्षात् परमेश्वर परब्रह्मरूप से उपास्य होते हैं।

ईश्वर और अवतार की इस सूक्ष्म रहस्य के दृष्टि में रखकर जब हम भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र की आलोचना करेंगे तो स्फुट रूप से भासित होता है ि कवे पूर्णावतार है। बुद्धि के चारों रूप (धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य व वैराग्य) उनके स्वरूप में प्रतिष्ठित है। उनका जन्म ही-

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

श्रीकृष्ण के जीवन का प्रत्येक कार्य धर्म की कसौटी है। भागवत के ब्रह्मस्तुतिपरक अध्याय में भी कहा गया है-

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥

श्रीकृष्ण के सामर्थ्य व अवतारी होने का दर्शन हमें महाभारत के आश्वमेधिक पर्व में अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से मरे हुए परीक्षित को जीवनदान देने के समय दिखाई पड़ता है। महाभारतकार के शब्दों में-

श्रुत्वा स तस्या विपुलं विलापं पुरुषर्षभः।
अपस्पृश्य ततः कृष्णो ब्रह्मास्तं प्रत्यसंहरत्॥
प्रतिजज्ञे च दाशार्हः तस्य जीवितुमच्युतः।
अब्रवीच्च विशुद्धात्मा सर्व विश्रावयञ्जगत्॥
न ब्रवीम्युत्तरे मिथ्या सत्यमेतद् भविष्यति।
एष सञ्जीवयाम्येनं पश्यतां सर्वं देहिनाम्।
नोक्तपूर्वं मया मिथ्या स्वैरेष्वपि कदाचन।

न च युद्धात्परवृत्तः तथा सञ्जीवतामयम्॥
इत्युक्तो वासुदेवेन स बालो भरतर्षभ।
शनैः शनैर्महाराज प्रास्पदत सचतनः॥

उत्तरा का करुण विलाप सुनकर श्रीकृष्ण ने ब्रह्मास्त्र को शान्त किया और परीक्षित को जीवित करने की प्रतिज्ञा लेते हुए कहा कि–

'हे उत्तरे! मैंने अपने जीवन में आज तक हँसी मैं भी झूठ नहीं बोला अथवा युद्ध से मैं कभी भी यदि पराङ्मुख नही हुआ। इस पुण्य के सामर्थ्य से यह जीवित होबे।' श्रीकृष्ण के मुख से यह शब्द निकलते ही वह शिशु जीवित हो गया।

महाभारत व्यास ने श्रीकृष्ण को आदिपर्व के अन्तर्गत संभव पर्व में समस्त चराचर में व्याप्त साक्षात परमेश्वरी सामर्थ्य का प्राकट्य मानते हैं–

यस्तु नारायणो नाम देवदेवः सनातनः।
तस्यांशो मानुषेष्वासौ वासुदेवः प्रतापवान्॥
शेषस्यांशश्च नागस्य बलदेवो महाबलः।
सनत्कुमारः प्रद्युम्नं विद्धि राजन्महौजसम॥
श्रियस्तु भाग संजज्ञे रत्थर्थं पृथिवीतले।
भीष्मकस्य कुले साध्वी रुक्मिणी नाम नामतः॥

अर्थात् प्रतापी वासुदेव सनातन देवों के देव नारायण के मानुषी अंश है। महाबली बलदेव शेषनाग के अंश है और प्रद्युम्न सनत्कुमार के अंश है। भीष्मक कुल में उत्पन्न रुक्मिणी लक्ष्मी का अंश है।

महाभारत में अपने आदर्श का परिचय देते हुए युधिष्ठिर के यज्ञ में आगन्तुकों के चरण प्रक्षालन का कार्य लिया था। कंस की मृत्यु के पश्चात् जब उन्हें मथुरा का राज्यग्रहण करने को कहा गया तो उन्होंने अपने पूर्वजों की परोक्ष आज्ञा का सम्मान करते हुए राज्य छोड़ दिया। युधिष्ठिर की सभा में उन्होंने शिशुपाल के सौ अपराधों को हंसते माफ कर दिया। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा के प्रसंग त् में देवव्रत भीष्म महाभारत सभापर्व अध्याय 28 में कहते हैं– ये श्रीकृष्ण केवल हमारे ही पूज्य नहीं है अपितु त्रैलोक्य में सबके पूज्य है। ये ही अव्यक्त प्रकृति और शाश्वत ईश्वरतत्त्व है। सबकी गति का कारण होने के कारण देवों के सहित सभी लोकों में श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ है।

भीष्म पर्व में तृतीय दिन जब श्रीकृष्ण चक्र उठाते हैं, तब भीष्म श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहते है–

हे जगन्निवास देवेश! आओ, तुम्हें मेरा नमस्कार है। हे चक्रपाणि माधव! युद्ध क्षेत्र में इस रथ से तुम मुझे बलपूर्वक गिरा दो। हे कृष्ण! यदि तुमने मेरा वध कर दिया तो उसकी अपेक्षा इस संसार में मेरे लिए अधिक कल्याणकारी और प्रतिष्ठा की बात नहीं है।

फिर नवें दिन जब वे चाबुक (कशा) लेकर भीष्म की ओर दोड़ पड़े, उस दिन परमेश्वर कहकर उन्होंने श्रीकृष्ण की स्तुति की। महाभारत के अनुशासन पर्व 167 में भीष्म उन्हें 'देवदेवेश सुरासुरनमस्कृत।' आदि विशेष्णों से विभूषित करते हैं। महाभारत के सर्वश्रेष्ठ व सर्वस्वीकृत योद्धा गंगापुत्र भीष्म का यह विचार उन्हें परमेश्वर मानने को बाध्य कर देता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में उन्होंने सर्वत्र अपने ईश्वरीय ज्ञान व भाव को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने चतुर्थ अध्याय में अर्जुन की शंका का समाधान करते हुए बताया कि हे अर्जुन मैंने यह योग विवस्वान् को बताया, विवस्वान् ने मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को बताया। फिर कालान्तर में यह नष्ट हो गया तू मेरा मित्र और भक्त है, इसलिए मैं तुझे वह योग बताता हूँ। उस समय तक श्रीकृष्ण के

परमेश्वरत्व का ज्ञान न होने के कारण आश्चर्यचकित होकर अर्जुन ने पूछा–

अपरं भवतां जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेताद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति॥

आपका जन्म अभी हुआ है और विवस्वान् का अति प्राचीन काल में– ऐसी स्थिति में आपके द्वारा विवस्वान् को यह योग बताया जाना कैसे संभव हो सकता है? तब श्रीकृष्ण इसका उत्तर देते हुए कहते हैं–

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्॥
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

हे अर्जुन मेरे और तुम्हारे भी अनेक जन्म हुए। तुम्हें उसका ज्ञान नहीं, परन्तु मुझे तो उनका पूर्ण ज्ञान है। मैं अजन्मा, अव्ययात्मा और समस्त प्राणिमात्र का ईश्वर हूँ। आत्ममाया के योग से मैं प्रकृति का अधिष्ठान होकर जन्म ग्रहण करता हूँ।

श्रीमद्भगवद्गीता में ही वह पुनः कहते हैं–

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्वन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो मामव्ययमनुत्तमम्॥
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥
वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥

वस्तुतः मैं अव्यक्त हूँ, तथापि अज्ञानी लोग मुझे अपने समान देहधारी व्यक्ति समझते हैं। मैं अजन्मा और अव्यय भूत भविष्य सब कुछ जानता हूँ पर कोई मुझे नहीं जान सकता।

जब भीष्म ने श्रीकृष्ण से शान्ति पर्व में कहा कि ''युधिष्ठिर को ज्ञान का उपदेश मैं दूँ इससे अच्छा आप ही क्यों नहीं देते?तब इसको उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं–

यशसः श्रेयसश्चैव मूलं मा विद्धि कौरव।
मत्तः सर्वेभिनिर्वृत्ताः भावाः सदसदात्मकाः॥

हे कौरव! यश और श्रेय, शाश्वत और आशाश्वत सभी का मूल मैं ही हूँ।

श्रीकृष्ण को कौरव और पाण्डवो के बीच सान्ध कराये ही वापस लौटते देखकर उत्तंक उन्हें शाप देने लगते हैं। तब वे आश्वमेधिक पर्व में उन्हें अपने दिव्य विश्वरूप का दर्शन कराते हैं।

ततः स तस्मै प्रीतात्मा दर्शयामास तद् वपुः।
शाश्वतं वैष्णवं श्रीमान्ददृशे यद् धनञ्जय॥
स ददर्श महात्मानं विश्वरूपं महाभुजम्।
सहस्रसूर्यप्रतिमं दीप्तिमन्तं वकोपमम्।
सर्वमाकोशमावृत्य तिष्ठन्तं सर्वतोमुखम्।
तद् दृष्ट्वा परमं रूपं विष्णोः वैष्णवमद्भुतम्॥

महाभारतकार भगवान् श्रीकृष्ण की परमेश्वर का अवतार ही नहीं पूर्णावतार सिद्ध करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन का स्वरूप स्वत:सिद्ध देवत्व की पूर्णता और साक्षीपन की अखण्ड अभिव्यक्ति है। श्रीकृष्ण के जीवन में संघर्षों की समस्याओं और उन्हें सुलझाने के प्रश्न इतने अधिक जटिल विशाल और व्यापक हैं कि उनके लिए दिव्यता की पूर्ण आवश्यकता है। इसी अभिप्राय से श्रीमद्भागवतकार ने परमेश्वर के समस्त अवतारों की गणना करके अन्त में निष्कर्ष निकाला है कि–

एते चांशकलाः पूर्णः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥

अर्थात् अन्य सब अंशावतार हैं, श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं।

॥ इति॥

***

भाद्रपद में कृष्णावतरण का रहस्य

डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य

'भद्र' शब्द से व्युत्पन्न 'भाद्र' अपने अन्वर्थ रूप में कल्याणकारक मास का नाम है। इसी मास भगवान् श्रीकृष्ण ने वात्सल्य, सौशील्य एवं सौलभ्य इन तीन गुणों के साथ अवतार लिया और अपनी कृपा से चराचर जगत् को अनुप्राणित किया। सगुणोपासना की दृष्टि से भगवत्तत्त्व का ऐसा ही निरूपण करता हुआ यह आलेख प्रस्तुत है।

प्रभुताया कृपा श्रेष्ठा सर्वथा सर्वदा शुभा।
कृपाकूपारकेन्द्रं तं प्रियं कृष्णं नमाम्यहम्॥

परात्पर ब्रह्म का अवतारस्थल, मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की साधना एवं पुण्य संचरण का पवित्र स्थल भारत है। निश्चित ही भारतभूमि सर्वतः पवित्र तथा ज्ञानगुणसंचरण का केन्द्र है, जिसका परिचय यथावसर विश्व को होता रहा है।

परमब्रह्म का अवतारस्थल भारत है, इस कथन में आत्मश्लाघा नहीं है। तत्त्वतः परब्रह्म का प्रकृति के साथ नित्य सम्बन्ध है। परब्रह्म के अद्भुत रूप का दर्शन प्रकृति की पृष्ठभूमि में ही सम्भव है। यथा- गीता के चतुर्थ अध्याय में कहा गया है-

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥6॥

अर्थात् मैं अजन्मा और अविनाशी रूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योग माया से प्रकट होता हूँ। उक्त प्रमाणानुसार प्रकृति का पूर्ण रूप भारत में ही छह ऋतुओं के रूप में संचरित होता है। छह ऋतुओं वाली यह प्रकृति भारत से भिन्न देश में नहीं है। अतः परब्रह्म का पूर्णावतार भारत में ही सम्भव है। भारतेतर देशों में परिस्थिति परिवेश के अनुसार लोककल्याणार्थ परब्रह्म की आंशिक शक्ति का अवतरण होता है।

इसलिए भारत में पुण्यपूत भक्तों की लम्बी शृंखला अद्यावधि संचरित है। उन भक्तों के सौभाग्य से तो देवगण भी ईर्ष्या करते हैं-

भागवत में एक वर्णन है-

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्द सेवौपयिकं स्पृहादि नः॥

देवगण के मध्य चर्चा हो रही है- भारतभूमि पर भक्ति-भागीरथी में स्नान करनेवाले भक्तों को देखकर देवराज इन्द्र भी अपनी भाग्यहीनता का अनुभव करते हुए चिन्तन कर रहे हैं- 'देखो इन लोगों ने कौन से तप किया है, जिससे स्वयं हरि प्रसन्न होकर दुर्लभ मानुष तन धारण किया। वह भी विश्व पवित्र परब्रह्म भूमि भारत में जन्म। उसमें भी सर्वाधिक सौभाग्य चरम पुण्यकाल फल मुकुन्द सेवा की स्पृहा निरन्तर निर्बाध संचरित है। धन्य भारत, धन्य मानव जीवन धन्य हरिभक्ति।'

स्वेच्छाजन्यप्रयुक्तभक्तकल्याणेहालीलावशँवद,

* *व्याकरणाध्यापक, श्रीराम संस्कृत महाविद्यालय, सरौती, अरवल। पटना आवास- ज्योतिषभवन, शिवनगर कालोनी, मार्गसंख्या 10, बेऊर जेल के पीछे, पटना।*

आर्त्तत्राणपरायण, अनन्त कल्याणज्ञान गुणगण-निकेतन, श्रीमन्नारायण के मुख्य दशावतारों में राम-कृष्ण अवतार विशेष अनुपम अथ च विलक्षण है; क्योंकि इन दोनों अवतारों में मर्त्यभूमि में सामान्य जनमानस के स्वाभाविक व्यावहारिक धरातलीय चरित्र-चित्रण से भगवत्तत्त्व का आध्यात्मिक रहस्यजन्य सौरभ का निःसरण हुआ है। फलतः संस्कृत वाङ्मय में इन दोनों का उदात्त चरित अभिनन्दनीय, नमनीय केन्द्र रहा है, जिसकी निरन्तरता सीमातीत है। शीर्षज्ञानराशि, ब्रह्मनिःश्वासभूत वेद भी जिनके विषय में 'नेति नेति' कहकर ही आत्मतोष करता है। जहाँ भगवान् राम को मर्यादापुरुषोत्तम तथा भगवान् कृष्ण को लीलापुरुषोत्तम कहा गया है वह कथन भी भक्तभावाभिचिह्नित हैं।

समसामयिक ऋतुचक्र परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में मानव शक्ति की सीमा में प्राकृतिक कल्याणशक्ति के संचार के लिए मुहूर्तों का स्वरूप निर्धारित किया गया है। जिसमें मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र, लग्न, वार आदि का स्थान है। 12 मासों में भाद्रपद भद्रस्वरूप कल्याण का मास है। जिनके आश्रय से संसार का कल्याण औपाधिक है अर्थात् कल्याण केन्द्र सापेक्ष है। उस कल्याण केन्द्र भद्रस्वरूप के सम्बन्ध से जगत्कल्याण मुहूर्त के लिए स्वीकृत कालखण्ड भी भद्र हो जाता है, वही भाद्रमास है।

विलक्षण भाद्रमास भद्र-सम्बद्ध 'भाद्र' है। 'भदि कल्याणे' (भ्वादि) धातु से उणादि रक् प्रत्यय से 'भद्र' शब्द की सिद्धि होती है। भद्र चतुर्दिक् शाश्वत अक्षुण्ण कल्याणस्वरूप का नाम है। जहाँ अभद्रता भी भद्रता में परिवर्तित हो जाती है। यही है भद्रता की शाश्वत अक्षुण्णता। भद्रावतार के जन्म से ही अभद्रता का भी संचार होता है, जैसे भाव ही अभाव की सत्ता का नियामक होता है, परन्तु भद्रस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण से सम्बद्ध होने से सम्पूर्ण अभद्रता भी भद्रता में परिवर्तित हो जाती है। दुष्टता का सांसारिक चातुर्य ध्वस्त एवं पराजित होता चला गया। भौतिक शक्ति से अपनी चतुरता का दम्भ भरनेवाला परब्रह्मशक्तिविरोधी मनोरूप कंस सदैव हारता हुआ भी भद्रसम्बद्ध भद्र बना जाता है।

अतः सबसे प्रार्थना है कि चातुर्य भद्र के केन्द्र कृष्ण की सत्ता के सामने चतुर बनने का दम्भ न भरें। **'करिष्ये वचनं तव'**, यही जीव-चातुर्य है।

अब अवतारकारण पर विचार करें। सर्वतन्त्रस्वतन्त्र परिमित शक्ति केन्द्र का अवतरण सर्वथा स्व-सापेक्ष ही होगा। किन्तु उसका भी स्वरूप होगा, जिसका निर्धारण प्रभुपादारविन्द परस्पररसाभिसिक्त भक्तों ने किया है।

अनन्तकल्याण गुणगणनिकेतन, परमशक्ति के अवतरण का कारण मुख्यरूप से वात्सल्य, सौशील्य तथा सौलभ्य इस स्वभावत्रय की प्रतिबद्धता है। इन्ही वात्सल्य, सौशील्य, और सौलभ्य त्रिगुणसमेकित शक्ति संचरण का व्यावहारिक रूप कृपा है।

कृष्णावतार में कृपा की रक्षा, पुष्टता, के लिए सदैव प्रभुता अग्रसर रही है। जिसका मात्र एक उद्देश्य था कृपापात्र की प्रसन्नता, जो कृष्णचरित में सदैव मुखर है। इसीका नाम भक्तों ने दिया है- लीलाविहार। विशेष रूप से कृपासंचरणशीलता को पूज्य वल्लभाचार्य ने पृथक् रूप से पुष्टिमार्ग के रूप में स्वतन्त्र दार्शनिक रूप में स्थापित किया।

अग्रेसरता में वात्सल्य, सौशील्य एवं सौलभ्य का संक्षिप्त रूप संचरित करते हुए अन्त में समेकित शक्ति संचरण कृपा का दिग्दर्शन भद्र होगा।।

वात्सल्य-

निर्हैतुक कृपा की रसपूर्ण चरम सीमा गुण के जिस अंश में परिपक्व हो उठती है- वही वात्सल्य है।

वात्सल्य दोष नहीं देखता है। वह दोषों में भी गुण देखता है। दोष के लिए भी गुण का मूल्य चुकाता है। हानि को लाभ और देने के मानसिक चिन्तन को ही प्रदत्त उपहार मानकर तृप्त हो जाता है। यही अन्तरंग प्रेम का अति अंतरंग रूप है, जो द्वेष से सर्वथा, सर्वदा अस्पृष्ट रहता है। भला कौन अपनी आत्मा (पुत्र) से द्वेष करेगा। वस्तुतः पुत्र अपने गुणों से पिता को प्रसन्न नहीं कर सकता, प्रत्युत पिता अपने वात्सल्य के कारण स्वयं सुप्रसन्न हो उठता है। अतः स्वभावतः अज्ञानी जीव का कल्याण प्रभु के वात्सल्य के कारण से होता है अन्यथा रोम-रोम दोष मन्दिर अज्ञानी जीव को परम सात्त्विक शुद्ध स्वभाव का सामीप्य की अर्हता ही असम्भव है। प्रभु के अनन्त गुणों में जीव के दोषों को गुण समझकर उपहार समझकर तथा उसी को सम्बन्ध का आधार बनाकर सर्वदा के लिए बिक जाना ही सर्वोच्च गुण है। वस्तुतः इसी गुण के अन्तर्गत सभी गुण समाहित हो जाते हैं।

संसार का वात्सल्य देखें- गाय नवप्रसूत वत्स के शरीर पर दुर्गन्ध मालिन्य को भी अतिहर्ष के साथ चाटकर नहीं अघाती। गोमय भण्डार के मध्य खड़ी रहकर भी क्षण भर के लिए अपने वत्स को नेत्र से ओझल नहीं होने देना चाहती है। सावधानी की चरमसीमा यह कि एक मशक भी वत्स के शरीर पर घात न करे। कुररी का विलाप किसका हृदय नहीं कम्पित कर देता है। यह जीव पशु का वात्सल्य तो सर्वथा असहाय निरवलम्ब जीवों के परमपिता का वात्सल्य निश्चित ही असीम अनुकम्पा अद्वितीय तथा दुर्लभ होगा।

सर्वविदित है कि सर्वथा असहाय शक्तिहीन अपने ही भौतिक निज पिता से अन्तिम मृत्युक्षण को देखकर पुत्र प्रह्लाद के आर्तस्वर से नृसिंहावतार (क्रोध का चरमावतार) हुआ। हिरण्यकशिपु का वध भी हुआ; पर क्रोध शान्त नहीं हुआ। क्रोधाग्नि की लपटें दूर-दूर तक निकलती ही रही। देवगण प्रार्थना करते हुए भी उस ताप के निकट नहीं आ पा रहे हैं। यहाँ तक कि नित्य अर्द्धांगिनी लक्ष्मी भी अक्षम है। माता लक्ष्मी प्रह्लाद को दूर से ही निर्देश देती है- "तू अपने कोमल करकमल से परमपिता के जीभ का स्पर्श करो।"

प्रह्लाद ने वैसा ही किया। पुत्र के कर कमल के स्पर्श में हिमालय से भी अधिक शीतलता थी। स्पर्श होते ही प्रह्लाद को गोद में बैठाकर पश्चात्ताप से रोने लगे और क्षमा माँगने लगे।

क्वेदं वपुः क्व च कुमार वयस्यमेतत्
क्वैताः प्रमत्तकृतदारुणयातनाश्च।
श्रुत्वा त्वदार्त्तवचनं झटिति प्रयातः
क्षन्तव्यमङ्ग यदि मे समये विलम्बः॥

दस वर्षीय प्रह्लाद का कुमारावस्था का कोमल शरीर और हिरणकशिपु-जैसे प्रमत्त क्रूर के द्वारा दी गयी यातनायें चरम कष्ट का आलम्बन है। हे पुत्र! तुम्हारे आर्त्तवचन को सुनकर अत्यन्त तीव्र गति से आया तो, किन्तु स्वभावतः आने में विलम्ब हुआ होगा। विलम्ब का अपराधी तो मैं ही हूँ। अतः इस अपराध के लिए मुझे क्षमा कर दो। यही है परमपिता प्रभु के वात्सल्य का दिग्दर्शन!!

सौशील्य

स्वोत्कृष्ठता तथा परनिष्ठ अपकृष्टता की सर्वथा सर्वदा शून्यता सौशील्य है। अतएव सर्वसम्पन्नावस्था में रहकर भी सुशील स्वामी होने

के कारण अतिहीन एवं दीन सेवकों की गोष्ठी में बैठकर भी उन्हीं के स्तर के व्यवहार में लिप्त होने में आनन्द का अनुभव हो रहा है, यही वह गुण है जो पर्णकुटीर से अत्युच्च महार्घप्रासाद तक समानता को स्थापित करता है। सुशीलता सार्वभौम लोकप्रियता की एक मात्र कुंजी है। कुशीलता तो लोकप्रियता की सुरसा है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि सुशीलता की महत्ता सामर्थ्य से ही प्रतिष्ठित होती है। असमर्थों की सुशीलता तो दीनता का कारण मानी जाती है।

जगत्पति का सौशील्य गुण भी जीवों के कल्याण का कल्पद्रुम है। सर्वविधादिकातिदिव्य शाश्वत आनन्दघन लक्ष्मीरमण का मत्स्य, कूर्म, वराह आदि हीन योनियों में अवतरण सुशीलसिन्धु संचरण ही है।

विहाय लक्ष्म्या सह संविदारं
को याति मत्स्यादिषु हीनयोनिषु।

वर्ण और आश्रम का विचार तो वर्णाश्रमियों के लिए अपेक्षित है, उसे नहीं जो वर्णाश्रमातीत है। प्रभु तो सर्वगुणसम्पन्न होकर भी सर्वगुणातीत हैं। अतएव विदुर-पत्नी द्वारा अर्पित शाक, शबरी का बेर, निषाद का आतिथ्य में भी प्रभुता अक्षुण्ण हैं। यहाँ तक कि आमिषभोजी जटायु को गोद में बैठाकर उसके शरीर की धूल को अपने आँसुओं का प्रयोग करते हुए भी कृतकृत्य हो रहे हैं- **जटायु की धूरि नयन से झाड़ी।** यही है सौशील्य!!

सौलभ्य

असीम सर्वशक्तिसम्पन्न देश, काल, वस्तु तथा परिच्छेद से ऊपर उठकर सर्वसामान्य जन के परिप्रेक्ष्य में भी, अशक्य अति दुर्लभ होकर भी, जनहित के लिए देश, काल, परिस्थिति तथा परिवेश के अनुकूल अपने को स्थापित करना सौलभ्य गुण है। यही सौलभ्य सरलता का परम कारण है।

सौलभ्य गुण संचरण से ही द्रौपदी के चीरहरण काल में वस्त्रावतार, प्रह्लाद की रक्षा के काल में नृसिंहावतार, कुन्ती के कष्टों का निवारण के लिए व्यग्रता-प्रदर्शन, अर्जुन के लिए रथ का संचालन, ग्वाल-बालों के संग गोचारणादि, गोपिकाओं के दूध-मक्खन पर नर्तन, तुलसीदल मात्र के मूल्य पर स्वयं का विक्रय कर देना, यहाँ तक कि सूक्ष्म विभु एवं व्यापकावस्था को त्यागकर शालग्राम, नर्मदेश्वर तथा विभिन्न अर्चनीय रूपों में अपने को भक्तों के मध्य सर्वथा सर्वदा सुलभ बनाना सौलभ्य का संचार ही तो है। तथापि जीव दुःखी है, यह महान् आश्चर्य है।

वात्सल्य, सौशील्य और सौलभ्य का समेकित रूप में शक्ति संचरण प्रभुकृपा है। कृष्णावतार में पूर्ण रूप से कृपा अग्रसर रही है। वहाँ प्रभु और प्रभुता गौण है या कहें तो अस्तित्वहीन है। जो संसार का समर्थ शासक जगन्नियन्ता अपरिमित शक्ति सम्पन्न है वह चोरी करे और पकड़ा जाये, यह कृपा ही तो है। पर वहाँ भी परब्रह्म शक्ति का संचरण करते रहे हैं।

प्रभा नामक गोपिका के यहाँ चोरी करते पकड़े गये। प्रभा क्रुद्ध होकर बोली- 'आज इसे बाँधकर यशोदा के पास ले जाऊँगी।' परात्पर परब्रह्म आज आभ्यन्तरीय प्रेमरज्जु में बँधकर जा रहे हैं। प्रभा रज्जुबद्ध कृष्ण को लेकर आ रही है- यह है कृपा संचरण। यशोदा के घर पहुँचकर चिल्लाकर वह बोलती है- 'अरी यशोदे, तुम्हारा नटखट चोर पुत्र प्रतिदिन चुराकर दूध, दही, मक्खन का लेता था। आज पकड़ा गया है इसे सम्हाल लो।' यशोदा सुनकर अपना घर देखती है तो बालकृष्ण लीला में लीन हैं। यशोदा अतिक्रुद्ध होकर आयी और बोली-

'प्रभा तुम पागल हो गयी हो। मेरा लल्ला तो घर में खेल रहा है।' तब प्रभा पीछे देखती है, तो उसका अपना पुत्र ही बँधा हुआ है। लज्जित हो गयी। सोचने लगी मतिभ्रम तो नहीं है। घर लौटने के क्रम में पुनः कृष्ण उपस्थित हो गये। और प्रभा से बोले– 'तुम हृदय से प्रतीक्षा में रहती हो तभी तो मैं जाता हूँ। आज बेटा ही बना हूँ, अगली बार पति बन जाऊँगा।' यह है प्रभुता का संचरण।

कृपा

ऐसे कृपामाधुर्य के सुन्दर उदाहरणों से प्रभुकृष्ण का चरित ओतप्रोत है। सिद्ध एवं भक्ति भाव से भावित पूज्य आचार्यों ने प्रभु की कृपा को ही महत्त्व दिया है। भगवान् कृष्ण के साथ धार्मिक जनों का सम्बन्ध हुआ, पर कृपापात्र तो विरले ही हुए। व्यावहारिक भी है, मेला जन–सम्मर्द या यान में अनेक जनों के साथ सम्पर्क होता है, दर्शन होता है पर जिससे मधुर सम्बन्ध होता है, उसी के साथ आन्तरिक हितकारी का भाव का संचरण होता है। इसी तरह प्रभु से जिनका महान् विश्वास के साथ मधुर सम्बन्ध होता है, वही कृपा का संचार होता है। कृपा सदैव निरपेक्ष होती है। पर उस कृपारूपी वर्षा के जल को संरक्षित करने के लिए खात तो आवश्यक है। वही खात यानी गढ़ा है भक्त का निर्मल प्रेमपूर्ण मन, जो कृपा के एकत्रीकरण के लिए आवश्यक है, अतएव वहीं कृपा का आधार पात्र है। अन्तःकरण से आभासी संसार के सम्बन्ध को अलग कर प्रभु केसाथ नित्य सम्बन्ध को जागृत करना ही मानव जन्म की सार्थकता है।

कृपा संचरण का दूसरा अनुपम उदाहरण इस प्रकार है। व्रज में गोचारकों की एक मण्डली थी। कन्हैया उसके नेता थे। इसका नेतृत्व सबको प्रिय था। एक बार उन्होंने नियम बना दिया कि सभी ग्वाल–बाल सखा मध्याह्न में अपने घर से क्रमशः कुछ न कुछ जलपान लायेंगे, उसे हम सब साथ मिलकर खायेंगे। उसमें दीन ब्राह्मण शाण्डिल्य कुछ भी नहीं ला सका। एक दिन भगवान् कृष्ण ने शाण्डिल्य से कहा– 'कल किसी भी परिस्थिति में तुम्हें अपने घर से कुछ भी अवश्य लाना है।' दीन ब्राह्मण शाण्डिल्य उदास हो घर पहुँचा। अपनी माँ पौर्णमासी से कहा– 'माँ कल मेरी बारी है। कुछ अवश्य व्यवस्था कर देना। नहीं तो कन्हैया बहुत पीटेगा। माँ दूसरे घर से माँगकर मट्ठा शाण्डिल्य को थमा देती है। शाण्डिल्य लेकर चला तो, पर मट्ठा का खट्टी गन्ध से दुःखी हुआ। अरे कन्हैया के घर का मट्ठा तो मीठा होता है। यह खट्टा है, स्वाद चख लेता हूँ, ऐसा सोचकर पीने लगा। स्वादहीन खट्टा समझकर सोचने लगा– 'इसे तो कन्हैया उठाकर फेंक देगा और पीटेगा भी।' उसने सोचा– 'भूखा हूँ ही, सब पी जाता हूँ।' पर अन्तर्यामी से क्या छिपा था, कन्हैया पहुँच गये– 'अरे दुष्ट शाण्डिल्य, तू क्या कर रहा है। पौर्णमासी चाची का मधुर मट्ठा अकेले पी रहा है।' तब तक शाण्डिल्य सब कुछ पी चुका था, पर पीने का चिह्न होठों पर स्पष्ट था। कन्हैया ने बलपूर्वक शाण्डिल्य को अशक्त कर पटक दिया और उसके दोनों हाथों को पकड़कर होठों पर लगे मट्ठा को जीभ से चाटने लगे। और कहने लगे– 'इतना मीठा और स्वादिष्ठ मट्ठा तो आजतक नहीं पीया था, इसीलिए तूँ चुराकर पी रहा था। कन्हैया घंटों शाण्डिल्य का ओठ चाटते रहे। यही है कृपा संचरण, जिसके सुप्रभावसंचरण में कोई भी अपने को तुच्छ दीन हीन न समझे, इसके लिए प्रभु की कृपा सदैव दौड़ती रहती है।

कृष्णेन सह सम्बन्धः सर्वदा हितकारकः।
प्रयासो हि तत्प्राप्त्यर्थं सफलः शुभदः स्मृतः॥

जय श्रीकृष्ण। जय जय कृष्ण।।

***

श्रीकृष्णस्तुतिः

श्रीकृष्ण शाश्वत हैं, आज भी कविगण अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए श्रीकृष्ण का अवलम्बन करते हैं। संस्कृत भाषा में भी आज भी काव्य रचे जा रहे हैं। अनेक आधुनिक कवियों ने सुरभारती का अवलम्बन किया है। ऐसी है एक रचना श्रीकृष्ण की स्तुति में प्रस्तुत है।

श्री रामकिंकर उपाध्याय*

तव सरोजदलाङ्घ्रियुगं हरे सुरगणैः सकलैर्मनुजैर्नुतम्।
मुनिभिरर्चितमद्वयमानसैर्विभवसारमसारमहीतले ॥

हे हरि, इस पृथ्वी पर सारी चीजें असार हैं। विभव के सार श्रीकृष्ण के चरणयुग्म हैं जिनकी वंदना अनन्य भाव से मानववृन्द, देवगण और मुनिगण आदरसहित करते हैं।।१।।

विधिमहेशविनायकशारदाः सकलसिद्धगणाः सुतपोधनाः।
तव यशांसि गृणन्ति शुकादयः सुवचसा स्तुतिकर्मणि तत्पराः॥

विधि (ब्रह्मा), महेश, गणेश, शारदा, सकलसिद्धगण, तपस्वी और कामादि दोष से विरत शुकदेवजी जैसे मनीषी सुंदर शब्दालंकारों से इनका (श्रीकृष्ण का) यशोगान करने में तत्पर रहते हैं।।२।।

विमलपादरजोभिरिहाम्बुधौ तव विभो सुधियां विमलं मनः।
कृतमकर्म च गर्हितमन्यथा दहति पापफलं हरिकीर्तनम्॥

हे प्रभो, इस संसाररूपी सागर में आपके विमलपाद परागकणों से बुद्धिमान् जीवों का मन पवित्र हो जाता है। निन्दित कर्म और पाप के फल हरिकीर्तन से किये गए नष्ट हो जाते हैं।।३।।

धृतसुधारससर्जकभूषितः कुसुममाल्यविराजितमस्तकः।
शिरसि बर्हिसुपिच्छमलंकृतो व्रजति गोपसखो सुरधेनुभिः॥

हाथ में सुधारस की सर्जना करनेवाली मुरली को लेकर, गले में सुगंधित फूलों की माला पहनकर और मोर के पंख का मुकुट पहनकर ग्वाल-बालों के सखा श्रीकृष्ण गायों के साथ प्रस्थान करते हैं।।४।।

मधुरवेणुरवं सुनिनादितं सुललिताधरपूररसामृतम्।
पिबत भक्तजनाः रसपूरितं श्रवणरन्ध्रसुतृप्तकरं शुभम्॥

श्रीकृष्ण के रससिक्त अधरों पर राजित, बहुत आकर्षक ढंग से बजायी गयी मुरली के धुन रूपी रसामृत की धारा का भक्तजन पान करें। यह कर्णरन्ध्र को तृप्ति प्रदान करनेवाला है। ।५।।

**शिक्षक, पालगंज, प्रखंड -पीरटांड़, जिला --गिरिडीह, झारखंड।*

पूर्वोत्तर भारत की
कृष्ण-भक्ति धारा में सामाजिक समरसता के सिद्धान्त

आचार्य किशोर कुणाल

भारतीय परम्परा में कृष्ण-भक्ति शाखा का विकास हर क्षेत्र में हुआ। सुदूर दक्षिण की आळवार सन्त गोदा ने श्रीकृष्ण को अपना प्रियतम माना तो सुदूर उत्तर काश्मीर की नारी सन्त लल्द्यद् ने श्रीकृष्ण को भी शाश्वत ब्रह्म के रूप में वर्णित कर उनमें समा जाने की लालसा जतलायी। महाराष्ट्र में विट्ठल के रूप में श्रीकृष्ण की पूजा विख्यात हुई।। पूर्वोत्तर भारतीय परम्परा भी अपेक्षाकृत विशिष्ट रूप में श्रीकृष्ण की भक्ति-परम्परा में डूबी रही है। आसाम, बंगाल, मिथिला तथा उड़ीसा में यह परम्परा हम अधिक मुखर पाते हैं। यहाँ आसाम, बंगाल तथा उड़ीसा की कृष्णभक्ति परम्परा के कुछ विशिष्ट कवियों का विवेचन तथा उनके द्वारा सामाजिक समरसता का वर्णन किया गया है।

पूर्वोत्तर भारत में सामाजिक समरसता के लिए मध्यकाल में जो आन्दोलन हुए, उसमें श्रीकृष्ण भी भक्ति-परम्परा का दर्शन होता है। इन कवियों ने मध्यकाल में श्रीकृष्ण की भक्ति में अनेक गीतों की रचना की, महाकाव्य लिखे तथा इसके माध्यम से सामाजिक समरसता, उदारता के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर समाज को जात-पात के भेद-भाव से मुक्त करने का प्रयास किया। यहाँ ऐसे कुछ कवियों का परिचय तथा उनके प्रमुख स्वर का विवेचन किया गया है। उस विषय पर मेरी पुस्तक दलित-देवो भव में विशेष रूप से विवेचन हुआ है।

बंगाल की कृष्णभक्ति परम्परा

जयदेव विद्यापति और चण्डीदास- ये तीन ऐसे वैष्णव कवि हुए, जिनके पदों को गाकर चैतन्य महाप्रभु झूम उठते थे; आत्म-विभोर हो जाते थे। जयदेव का गीतगोविन्द काव्य अपने पद-लालित्य एवं विषय-माधुर्य के कारण समस्त देश में संस्कृत विज्ञों के बीच अत्यन्त लोकप्रिय हो चला था। विद्यापति के पद भी मिथिला एवं बंगाल में पूरी तन्मयता से गाये जाते थे और उत्तर बंगाल में चण्डीदास के बंगला गीतों का बोलबाला था। चण्डीदास का 'श्रीकृष्णकीर्तन' ग्रन्थ जयदेव के गीतगोविन्द की शैली में लिखा गया काव्य है।

बंगाल में चण्डीदास नाम के कम से कम तीन कवि हुए हैं, जिनमें सर्वप्रमुख हैं बड़ू चण्डीदास। इन्ही की रचना है - कृष्णकीर्तन काव्य, जिसकी धुन पर कृष्ण-भक्तों में सदा धूम मची रहती थी। इस काव्य के एक पद में चण्डीदास ने इसकी रचना की जो संकेत तिथि दी है, उससे इसका रचना काल 1355 शकाब्द यानी 1433 ई. सिद्ध होता है। गणित आर्या में विरचित पद इस प्रकार है

विधुर निकटे बसि नेत्र पंचबाण।
नब-हु नब-हु रस गीति परिमाण।।
परिचय संकेते अंके निजा
चंडीदास रस-कौतुक किज्जा।

यही बाडू चण्डीदास चैतन्य महाप्रभु के श्रद्धास्पद थे। 'श्रीकृष्णकीर्तन' में कवि ने अपने को 'बडू' चण्डीदास कहा है। बंगला में बडू शब्द का अर्थ मन्दिर का सेवक होता है, जो सामान्यत: अ-ब्राह्मण होता है। इस प्रकार श्रीकृष्णकीर्तन के रचयिता कवि चण्डीदास ब्राह्मणेतर वर्ण के प्रतीत होते हैं। इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि 16वीं शती के अन्तिम पाद में एक और चण्डीदास हुए, जो नरोत्तमदास के शिष्य थे और उनमें इस चण्डीदास से अन्तर रखने के लिए उन्हें द्विज चण्डीदास कहा गया है। इस प्रकार बडू चण्डीदास और द्विज चण्डीदास से यह स्पष्ट होता है कि प्रथम चण्डीदास द्विजेतर वर्ण के थे। तीसरे चण्डीदास सतरहवीं शती के थे और उन्हें 'दीन' चण्डीदास कहा गया। बाद में भी चण्डीदास नामके अनेक कवि हुए, किन्तु इनका कोई विशेष महत्त्व नहीं रहा।

चण्डीदास उन्मुक्त विचार के व्यक्ति थे और तारा या रामी नाम की धोबिन उनकी अनुसंगिनी थी। कालिदास या सरलादास की तरह चण्डीदास नाम उनकी चण्डी-भक्ति के कारण मिला हो और तन्त्र-विद्या की सिद्धि में तारा धोबिन उनकी सहचरी सहायिका रही हो। उनके गीतों में सम्बोधित बासोली देवी चामुण्डा देवी का अन्य नाम है। चण्डीदास नाम के अनेक कवि होने एवं परवर्ती कवियों के ब्राह्मण के रूप में उल्लेख होने के कारण बडू चण्डीदास को भी कुछ कथाओं में ब्राह्मण बतलाया गया है, किन्तु सुकुमार सेन की व्याख्या के आलोक में बडू चण्डीदास सेवक वर्ग के ही प्रतीत होते हैं।

चैतन्य महाप्रभु पर उनकी कविताओं एवं अभिनयों का अत्यधिक प्रभाव था। उनके द्वारा की गयी प्रशस्तियों के अतिरिक्त भी चण्डीदास की महत्ता एवं लोकप्रियता प्रदर्शित करने के अन्य प्रमाण हैं। चैतन्य महाप्रभु के समकालीन सनातन गोस्वामी एवं जीवगोस्वामी ने मिलकर भागवत-पुराण पर 'तोषिणी' टीका लिखी है, जिसमें यह उल्लेख है

श्रीजयदेवचण्डिदासादि-दर्शित-दानखण्ड-नौकाखण्डादि-लीलाप्रकाराश्च ज्ञेया:।

अर्थात् जयदेव चण्डीदास आदि कवियों द्वारा दर्शित दानखण्ड, नौकाखण्ड आदि लीलाओं के प्रकार भी जानना चाहिए। यहाँ 'दर्शित' शब्द के प्रयोग से अभिनय का भी संकेत माना जा सकता है। इस उद्धरण से स्पष्ट है कि चण्डीदास की कविताओं एवं अभिनयों की मान्यता प्रबुद्ध वर्ग में मिल चुकी थी। 'चैतन्य-चरितामृत' में चैतन्य के कनीय समकालिक कृष्णदास कविराज ने स्पष्ट लिखा है कि महाप्रभु अपने जीवन के अन्तिम चरण में जयदेव विद्यापति और चण्डीदास के गीतों से भावात्मक पाथेय प्राप्त करते थे।

बडू चण्डीदास की कीर्ति का स्तम्भ उनकी कृति 'श्रीकृष्णकीर्तन' है, जो 415 वार्ता-रूपी एवं गीतों का संग्रह है। इन गीतों में कुछ फोलियो के गायब होने या पन्नों के फटने के कारण अनुपलब्ध हैं। राधा-कृष्ण के प्रेम पर आधृत इस काव्य में शृंगार एवं भक्ति रस का प्राधान्य है; किन्तु शृंगार भक्ति पर हावी हो जाने के कारण कही कहीं अश्लीलता की सीमा को स्पर्श करता प्रतीत होता है। फिर भी रसिक कृष्णभक्तों के बीच यह अन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। यद्यपि चण्डीदास नाम के अनेक बंगला कवि हुए हैं; किन्तु इसके रचयिता बडू चण्डीदास मन्दिर के सेवक वर्ग से थे और ब्राह्मणेतर थे। वे उन्मुक्त विचार के थे। उनकी तान्त्रिक सिद्धियों में तारा या रामी नाम की धोबिन संगिनी थी, जिनका साहचर्य कवि के काव्य एवं सुख का अजस्र स्रोत था।

चैतन्य महाप्रभु

चैतन्य महाप्रभु के भक्ति-आन्दोलन का यह व्यापक प्रभाव था कि कर्मकाण्ड की जटिलताएँ एवं वर्जनाएँ समाप्त हो गयीं। हर व्यक्ति 'हरे राम, हरे कृष्ण' या 'हरि बोल' का उच्चारण कर भगवान् की उपासना कर सकता था; कहीं कोई गोपनीयता या निषेध नहींथा। चैतन्य महाप्रभु ने धर्म को मन्दिर की चहारदीवारी से निकाल कर सड़कों पर सुलभ कर दिया था; पुरोहितों की पोथियों से निकलकर भक्तों की जिह्वा पर स्थित कर दिया था। धर्म का स्वरूप बदल डालने एवं इसे सर्व सुलभ करने के कारण तत्कालीन पुरातनपन्थी चैतन्य महाप्रभु एवं इनकी शिष्य-मण्डली को अश्रद्धा की दृष्टि से देखते थे तथा यदा कदा उनके विरोध में शासन-तन्त्र में परिवाद भी करते थे।

चैतन्य महाप्रभु का जन्म शाके 1407 (सं. 1542 वि०) (सन् 1485 ई.) की फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन गौड़ (बंगाल) देश के प्रसिद्ध नदिया (नवद्वीप) नगर में हुआ था। चैतन्य महाप्रभु ने अपने संकीर्तन से कृष्ण-भक्ति को सर्वसुलभ बनाया। उनके इस प्रयास में अनेक महापुरुषों का अवदान था, जिनमें एक ओर नित्यानन्द जैसे वरिष्ठ, कर्मठ सन्त थे, तो दूसरी ओर हरिदासजी जैसे अनन्य हरिभक्त, जो जन्मना मुसलमान थे, किन्तु हरिभक्ति का नशा ऐसा चढ़ा था कि प्रतिदिन तीन लाख बार हरि-नाम का जप करते थे नित्यानन्दजी निताई के नाम से प्रसिद्ध थे और निताई-निमाई की जोड़ी बहुत दिनों तक खूब जमी। बाद में निताई ने निमाई की अनुमति से ही गार्हस्थ्य-जीवन अपना लिया, किन्तु हरिभजन में कोई कमी नहीं की। हरिदास कोड़ों की मार खाते रहे किन्तु हरिभजन से विमुख नहीं हुए। रूप ओर सनातन ने राजकीय सेवा छोड़कर संन्यास का ऐसा ताना-बाना बुना कि वृन्दावन का प्रचीन गौरव लौटा दिया। चैतन्य महाप्रभु के सान्निध्य में आचार्य वासुदेव सार्वभौम, रघुनाथ दास गोस्वामी और प्रकाशानन्द सदृश महापण्डित आये। उन्होंने जगाई-मघाई-जैसे अत्याचारी अधिकारियों का हृदय-परिवर्तन किया, वासुदेव कुष्ठी, धनी तीर्थराम तथा उसके साथ दो वेश्याओं का उद्धार किया। नौरोजी डाकू को अपराध के जगत् से मुक्त किया और राजा रामानन्द राय से अध्यात्म पर विस्तृत विचार-विमर्श किया। राजा प्रताप रुद्रदेव पर अपनी असीम कृपा की वर्षा की। महाप्रभु वल्लभाचार्य से भी सत्संग हुआ। यह कल्पना से परे की बात है कि इन दो महापुरुषों का मिलन कितने पुण्यों का परिणाम रहा होगा। चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथजी की रथ-यात्रा को अपने संकीर्तन से ऐसा अविस्मरणीय महोत्सव बना दिया कि यह राष्ट्रीय पर्व ही न रहकर विश्वव्यापी हो गया। आज विदेश में भी अनेक महानुभाव जगन्नाथजी का रथ खींचकर अपने को धन्य मानते हैं। चैतन्य महाप्रभु ने अपने संकीर्तन में ब्राह्मण से चाण्डाल पर्यन्त सबको सामिल किया और हरिभजन में कोई जातीय बन्धन नहीं रखा।

चौबीस वर्षों के संन्यास आश्रम में हरि-कीर्तन की धूम मचाने के बाद शाके 1455 (संवत् 1590, सन् 1533 ई.) के आषाढ़ मास में रथयात्रा के महोत्सव के अवसर पर दिव्य भावोन्माद में वे सहसा दौड़ते हुए जगन्नाथजी के मन्दिर के अन्दर गये। उनके अन्दर प्रवेश करते ही सहसा मन्दिर के कपाट स्वत: बन्द हो गये। भगवान जगन्नाथ के समक्ष प्रणति के बाद वे सहसा भगवान् के विग्रह में विलीन हो गये।

इस प्रकार एक अति कर्मठ एवं विलक्षण व्यक्तित्व की अद्‌भुत लीलाओं को संवरण रहस्यमय परिस्थितियों में हुआ। जो लेखक ऐसे चमत्कारों में विश्वास नहीं करते वे महाप्रभु के इस अलौकिक अदर्शन में जगन्नाथ मन्दिर के कतिपय पुजारियों के षड्यन्त्र की आशंका इस आधार पर व्यक्त करते हैं कि चैतन्य महाप्रभु के 'हरि बोल'! या 'हरे कृष्ण! हरे राम!' संकीर्तन से धर्म सबके लिए सुलभ होता जा रहा था जिससे पुरोहितों का एकाधिकार समाप्त होता जा रहा था। साथ ही धर्म की चहारदीवारी के भीतर सबको जाति, वर्ण या धर्म के भेद-भाव के विना लाने के कारण पुरोहित लोग इनसे चिढ़े हुए थे, अतः उनकी इह लीला समाप्त करने में उनका हाथ हो सकता है। किन्तु ऐसा सम्भव प्रतीत नहींहोता, क्योंकि जब उन्होंने इहलीला का संवरण किया, तब वे प्रसिद्धि की पराकाष्ठा पर थे; उनके साथ सदैव गणमान्य व्यक्ति उपस्थित रहते थे। इतना ही नहीं, जिस दिन यह घटना घटी, उस दिन रथ-यात्रा का उत्सव था। हजारों लोग उपस्थित थे। स्वयं राजा भी महाप्रभु के भक्त थे। अतः किसी प्रकार के गुप्त षड्यन्त्र के सफल हो जाने की सम्भावना प्रतीत नही होती है। मुक्त आत्मा को जब अनुभूति होती है कि परमात्मा से मिलन की वेला आ गयी है तब वे इसी प्रकार अन्तर्हित हो जाते हैं। चैतन्य महाप्रभु का शरीर भले ही विलीन हो गया हो, किन्तु उनकी आत्मा जीवित, जागृत और सक्रिय है। 'हरे कृष्ण! हरे राम!' आन्दोलन ने आज समस्त भारत में एवं विदेशों में भी लाखों लोगों को भगवद्‌भक्ति की भागीरथी में गोता लगवाया और असंख्य भक्त भावावेश में नाच नाच गा उठते हैं-

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

या

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे
हे नाथ नारायण वासुदेव।

चैतन्य महाप्रभु ने इस प्रकार के बहुत सारे हरि नामों को भक्त की जिह्वा पर बिठाया।

शंकरदेव

असम में सामाजिक समरसता की सुरसरित् प्रवाहित करने का श्रेय भगवान् श्रीकृष्ण के उपासक अनन्य वैष्णव शंकरदेव को जाता है। उन्होंने 'श्रीकृष्णर-वैकुण्ठ-प्रयाण' कीर्तन में अपने महाप्रयाण के पूर्व अनन्य सखा उद्धव को सम्बोधित करते हुए समदृष्टि का यह शाश्वत सन्देश देते हैं

शुनियो उद्धव तुमि रहस्य भकति।
करिबा अभ्यास तुमि थिर करिमति॥
समस्ते भूतते व्यापि आछो मइ हरि।
सबाको मानिबा तुमि विष्णु-बुद्धि करि॥

उद्धव! तुम भक्ति का रहस्य मुझसे सुनो और स्थिर मति से तुम इसका अभ्यास करो। मैं हरि सभी प्राणियों में व्याप्त हूँ और तुम उन सबको विष्णु मानकर उनका आदर करो।

ब्राह्मणर चाण्डालर निविचारि कुल ।
दातात चोरत येनदृष्टि एकतुल॥
नीचत साधुत यार भैल एकज्ञान ।
ताहाके से पण्डित बुलिय सर्वजान॥

जो ब्राह्मण और चाण्डाल कुल में अन्तर नहींरखता, जो दाता और चोर में समदृष्टि रखता है और जो नीच तथा साधु में सम-प्रज्ञा रखता है उसे ही पण्डित और सर्वज्ञ कहते हैं।

विशेषते मनुष्यगणत यिटो नरे।
विष्णु-बुद्धि सर्वदाय मोके मान्यकरे॥
ईरषा असूया अहङ्कार तिरस्कार।
सवे नष्ट होवे तेवे तावक्षणे तार॥

जो व्यक्ति सभी मनुष्यों को विष्णु समझकर उनमें वैसी ही श्रद्धा रखता है, उसकी ईर्ष्या, असूया, अहंकार और तिरस्कार उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं।

देखि सखिगणे जोनो हासे सबे बेढ़ि।
मइ साधु इटो चोर हेन लज्जा एरि॥
कुकुर चण्डाल गर्दभरो आत्मा राम।
जानिया सबाको परि करिबा प्रणाम॥

वह वैष्णव) मित्रों के इस परिहास को कि मैं साधु हूँ और यह चोर है, की उपेक्षा करता है तथा श्वान, चाण्डाल और रासभ में भी आत्माराम देखता है और वही समझकर उसे प्रणाम करता है।

समस्त भूतत विष्णु-बुद्धि नोहे यावे।
काय वाक्य मने अभ्यासिबा एहि भावे॥
विष्णुमय देखे यिटो समस्ते जगते।
जीवन्ते मुकुत होवे अचिरकालते॥

जब तक सभी प्राणियों में विष्णु नहींदीखते तथा तन, मन और वचन में इस भाव का अभ्यास नहींहोता (तब तक मुक्ति नहींहोती); और जैसे ही समस्त जगत् में विष्णु व्याप्त हैं, यह भाव आता है, जन्म-मरण से तत्काल मुक्ति मिल जाती

सकल प्राणीक देखिवेक आत्म-सम।
उपाय मध्यत इटो अति मुख्यतम॥
मोर इटो धर्मर अल्वरो नाहि हानि।
यिहुते सम्यके मइ कैलो तत्त्व-वाणी॥

सभी प्राणियों को अपने समान देखना मुझको प्राप्त करने का श्रेष्ठ उपाय है। इस धर्म का अल्पांश भी कमी व्यर्थ नहीं जाता। उद्धव! मैं अब तुमको तत्त्व की वाणी बतलाने जा रहा हूँ।

दाम्भिक शठत नकहिबा इटो तत्त्व।
सदा उपदेश दिवा वैष्णव जनत॥
स्त्री-शूद्रो करे यदि आमात भकति।
ताहात कहिबा इटो ज्ञान महामति॥

दम्भी और शठ को यह तत्त्व नहींबतलाना; किन्तु वैष्णव-जनों को सदा उपदेश देना। यदि स्त्री और शूद्र मेरी भक्ति करते हैं, तो हे महामति उद्धव! उन्हें यह ज्ञान अवश्य देना।।

भकतेसे मोर हृदि जानिबा निश्चय ।
भक्त जनर जाना आमिसि हृदय॥
मइ विना भकते निचिन्ते किछु आन।
भकतत परे मइ नेदेखोहो आन॥

उद्धव! यह निश्चयपूर्वक जान लो कि भक्त ही मेरा हृदय है, मेरे प्राण हैं और मैं ही भक्तों का हृदय, उनके प्राण हूँ। भक्त को मेरे सिवाय किसी और का प्रयोजन नहींऔर मैं भी उन्हींकी चिन्ता दिनरात करता हूँ।

शंकरदेव के समग्र उपदेश का सारांश इस कृष्ण-उद्धव संवाद में समाहित है। ऐसे महामनीषी का जन्म अक्टूबर 1449 ई. में असम के नवगाँव जिले के आलि-पुखुरी गाँव में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। इसके पिता का नाम कुसुमवर था

जो भूयाँ सरदारों के शिरोमणि थे या यों कहें तो वे छोटे-मोटे सामन्त थे। शंकरदेव की माता का नाम सत्यसन्धा था जिनका निधन बालक के जन्म के 15वें दिन हो गया था। सन् 1481 ई0 में 32 वर्ष की अवस्था में वे अपने घर का दायित्व जामाता हरि को सौंपकर तथा सामन्ती की व्यवस्था अपने चाचा जयन्त दलपति और माधव दलपति को देखने के लिए अनुरोध करके लम्बी तीर्थ-यात्रा पर निकल पड़े। उनकी इस 17 सदस्यों वाली मण्डली में

शिक्षक महेन्द्र नदली, पुरोहित-पुत्र तथा आजीवन सहचर रामराम विप्र भी शामिल थे। 12 वर्षों तक यह भक्त-टोली देश के विविध तीर्थों का दर्शन करती रही जिनमें गया, काशी, पुरी, वृन्दावन, मथुरा, कुरुक्षेत्र, उप-बदरिकाश्रम, वराह-क्षेत्र, पुष्कर, द्वारका और रामेश्वर प्रमुख थे। इस दौरान नव-स्फूर्त वैष्णव-धर्म की भक्ति एवं समाज के सभी वर्गों को साथ ले चलने की शक्ति से वे अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने देखा कि कैसे कर्मकाण्ड की जटिलताओं से मुक्त होकर यह नया आन्दोलन सर्वत्र लोकप्रिय हो रहा था और इसमें धनी, गरीब, उच्च-नीच सब शामिल हो रहे थे। उन सबों में कोई भेद-भाव नहीं था; सामाजिक पृष्ठभूमि जो भी रही हो; भक्ति की भागीरथी में सबों का दर्जा एक था- भक्त का। एक ओर भारत के हृत्स्थल में स्वामी रामानन्दाचार्य का रामावत-सम्प्रदाय जातीयता का दुर्ग ध्वस्त कर प्रयाण कर रहा था; तो दूसरी ओर पूर्वी भारत में चैतन्य के संकीर्तन का सम्मोहन इतना आकर्षक बना दिया कि लोग सहज उधर खिंचते जा रहे थे। शंकरदेव ने पुरी में काफी समय बिताया। भगवान जगन्नाथ की रथ-यात्रा में भक्तों का सैलाब और उन्माद इतना मोहक था कि बरबस वह भक्तों को खींचे रहता था। शंकरदेव भी रथ-यात्रा में शरीक हुए थे; चैतन्य महाप्रभु के सान्निध्य में भी थे; नेत्र भी मिले थे किन्तु जगन्नाथ के ध्यान में वार्ता का अवसर कहाँ था? किन्तु शंकरदेव ने अपनी आँखों से वैष्णव-धर्म का जो जनान्दोलनात्मक स्वरूप देखा था, उसे वे अपने कामरूप क्षेत्र में मूर्त स्वरूप देना चाहते थे।

भक्ति के पथ के यात्री को मन्मथ के शर-प्रहार को झेलना पड़ता है। शंकरदेव तो मीरी और पीरी की लड़ाई भी लड़ रहे थे यानी एक ओर उनको अपनी रियासत की रक्षा सामन्त के रूप में करनी थी और दूसरी ओर उनके हृदय-श्रेत्र में ईश्वर के साम्राज्य का बीज-वपन हो रहा था। उनकी इच्छा के विपरीत रिश्तेदारों के दवाब में उनका दूसरा विवाह सन् 1497 ई. में कालिन्दी के साथ हुआ। किन्तु उनका मन अध्यात्म में रमा रहा। उन्होंने एकान्त स्थान में एक मन्दिर बनवाया जिसमें उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की काष्ठ-प्रतिमा मदन गोपाल के नाम से प्रतिष्ठित की। इस मन्दिर में एकाग्रतापूर्वक ध्यान, सार्वजनिक प्रार्थना तथा आध्यात्मिक विवेचन किया जाने लगा। यह काफी लोकप्रिय हुआ। वैदिक सत्र की शैली में यहाँ विद्वद्-गोष्ठियाँ होतीं, जिनमें दूर-दराज से विद्वान्, जिज्ञासु भाग लेने आते। इसी क्रम में, मिथिला के मूल निवासी जगदीश मिश्र पुरी में भागवत-पुराण (भावार्थ-दीपिका टीका सहित) लेकर बारदोवा आये, यहाँ एक वर्ष तक शंकरदेव और जगदीश मिश्र के बीच भागवत की श्रीधरी व्याख्या तथा अन्य विषयों पर विवेचन होता रहा। शंकरदेव ने इस विचार विनिमय को बहुत ही उपयोगी बताया और भागवत का प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर सदैव व्याप्त रहा। उन्होंने भागवत के अधिकांश भाग का अनुवाद भी असमी (कामरूपी) भाषा में किया। उन्होंने भागवत से 'सत्संग', पद्म-पुराण (उत्तर खण्ड) से श्नामश और भगवद्गीता से 'एकशरण' (अनन्य भक्ति) का सिद्धान्त लेकर अपने सम्प्रदाय का त्रिरत्न घोषित किया। शंकरदेव के नाम और सिद्धान्त की धूम मच गयी। लोग उस मन्दिर में आकर सामूहिक प्रार्थना करने लगे। उसका नाम अब 'नामघर' पड़ गया। गयापाणि उर्फ रामदास (कायस्थ-कुलोत्पन्न) अब इस सम्प्रदाय के प्रवक्ता बने। कट्टर शाक्त कायस्थ शतानन्द शंकरदेव के सरल सिद्धान्तों से प्रभावित होकर वैष्णव बन गये। दूसरे कट्टर शाक्त 32 वर्षीय

माधवदेव, अपने रिश्तेदार रामदास के साथ शास्त्रार्थ करने आये। उन्हें अपने प्रकाण्ड वैदुष्य पर अतिशय अभिमान था; किन्तु शंकरदेव के साथ हुए शास्त्रार्थ में वे ऐसे अभिभूत हुए कि उन्होंने न केवल शंकरदेव का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया; बल्कि उन्होंने वैराग्य धारण कर लिया। कुछ दिन पूर्व ही उनका विवाह नेघेरी के सम्पन्न कायस्थ कुल की कन्या के साथ तय हुआ था। उन्होंने एक परिचित सामन्त की सहायता से इस सगाई को निरस्त कराया, ताकि वे संन्यास-ग्रहण कर सम्पूर्ण समय समाज की सेवा और सम्प्रदाय के प्रचार में व्यतीत कर सकें। माधवदेव अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति थे। शाक्त पन्थ को छोड़कर वैष्णव धर्म अंगीकार कर लेने से शंकरदेव के आन्दोलन के वेग में अनेक गुनी वृद्धि हुई।

शंकरदेव ने वैष्णव धर्म की उदार परम्परा को असम में आगे बढ़ाया। उनके सम्प्रदाय में कोई भी उच्च या निम्नवर्ग का व्यक्ति बिना भेदभाव के हर प्रकार का कीर्तन-भजन कर सकता था; कोई भी धर्मग्रन्थ पढ़ सकता था तथा किसी भी प्रकार का पौरोहित्य करा सकता था। इस प्रकार उन्होंने समाज के पद-दलितों को समानता का अधिकार और सम्मान प्रदान किया। लोक-भाषा में अपनी रचनाएँ कर संस्कृत के कूप से ज्ञान के नीर का निर्बन्ध प्रवाह किया और कर्मकाण्ड के स्थान पर भक्ति को प्रतिष्ठित कर धर्म का मार्ग सरल, सहज बनाया। अपने एक पद में उन्होंने कृष्ण के मुख से उद्धव को यह कहलवाया है

तप जप परम संन्यास महादाने।
न पावे आमाके सांख्य योग तत्त्वज्ञाने॥
केवल भक्ति मात्र भोक करै वश्य।
कहिलो उद्धव इटो तोमात रहस्य॥

मैं जप, तप, वैराग्य या दान से अथवा साख्य, योग या ज्ञान से मिलने वाला हूँ। उद्धव! मैं तुमको यह रहस्य बतला रहा हूँ कि मैं मात्र भक्ति के वश में रहता हूँ। शंकरदेव की दृष्टि में तो वही पण्डित, वही महिमा-मण्डित था जो गोविन्द का गुण-गान करे

कृष्ण-किङ्कर शङ्कर कह भज गोविन्द पाय।
सोहि पण्डित सोहि मण्डित जो हरि-गुण गाय॥

उनका हरि भी गगन-सदृश घट-घट में यानी हर प्राणी में व्याप्त है- "ईश-स्वरूपे हरि सब घटे बैठह जैसन गगन वियापी।" और शंकरदेव ने हरि के नाम का ऐसा सिक्का चलाया कि बाकी सब सिक्के खोटे हो चले? यह हरि का नाम क्या था? वे कहते हैं जिसके नाम का श्रवण कर नीच श्वपच और श्रेष्ठ मुनि भी एक समान हो जाते हैं; वह समस्त जगत् का गुरु सतत आपके लिए मुक्ति का मंगल विधान करे

जाहे नाम सुनि नीच श्वपच मुनि
दोहो होवे एकु समान।
सोहि जगत गुरु तेरि सतते करु
मुकुति मङ्गल विधान॥

सरला दास

सरला दास ओड़िया भाषा के प्रथम महाकवि हैं। ओड़िया साहित्य के निर्माता के रूप में उनके तीन महाकाव्य उपलब्ध हैं। उनकी प्रथम रचना 'विलंका रामायण' है, जिसमें 2800 छन्द हैं। उनका कालजयी महाकाव्य 'महाभारत' श्रेष्ठ महाकाव्य है, जिसमें 83,000 छन्द हैं। उनकी अन्तिम रचना 'चण्डी-पुराण' है जिसमें 5500 छन्द हैं।

सरला दास का प्रारम्भिक नाम सिद्धेश्वर पारडी था और इसी नाम से उन्होंने अपनी प्रथम कृति 'विलंका रामायण' की रचना की। कालान्तर में

सरला देवी के अनन्य भक्त होने के कारण वे सरला दास के नाम से ही अभिहित होने लगे। सरला दास ने अनेक स्थलों पर अपने को शूद्र एवं कृषक बतलाया है। उनमें जन्म से ही मुनि के गुण विद्यमान थे और उनके धार्मिक, त्यागमय जीवन के कारण लोग उन्हें 'शूद्रमुनि' कहने लगे। कवि के अनुसार 'शूद्रमुनि' की उपाधि भी स्वयं सरला देवी ने ही दी थी। शूद्रमुनि सरला दास आजीवन दारिद्र्य में डूबे रहे। अपनी अन्तिम कृति 'चण्डी-पुराण' में वे लिखते हैं- 'मैं जन्म से ही बुद्धिहीन (अशिक्षित) हूँ, तथा मेरे परिवार के लोग भी निरक्षर हैं। मैं प्रतिदिन बलराम के अस्त्र यानी हल से खेती करता हूँ।'

'चण्डी पुराण' उनकी वृद्धावस्था की रचना है जिसमें लिखते हैं 'मेरा समय तेजी से बीत गया है; बिमारी ने भी मुझे राहु के तरह ग्रास लिया है। विक्षिप्त के समान लिखने में मेरी कोई गलती नहीं है। पता नहीं कैसे यह रचना पूरी होगी।' इस प्रकार हम पाते हैं कि शुद्रमुनि के हाथ में हल एवं लेखनी साथ-साथ हैं। प्रतिदिन हल चलाकर भी तीन-तीन महाकाव्य रच डालना असाधारण उद्यम एवं प्रतिभा का ही परिणाम हो सकता है। सामान्य जन के वश की यह उपलब्धि नहीं है कि हल चलाते हुए भी 91,300 छन्दों की रचना कर डाले। करीब दो लाख पंक्तियों का लेखन कार्य भी कितना कष्टसाध्य रहा होगा, यह इस तथ्य से अनुमान किया जा सकता है कि उड़ीसा में उस समय की लेखन-पद्धति में लिखते समय घुटनों को ऊपर की ओर मोड़कर उस पर तालपत्र रख कर सूई से टंकन कर लिखा जाता था। महाकवि सरला दास ने इतनी साधना के बाद इन तीन महाकाव्यों की रचना की होगी।

महाकवि सरला दास का सांकेतिक चित्र- घुटना पर ताड़ का पत्ता रखकर लोहे की विशेष प्रकार की कलम से लिखते हुए।

सरला दास का जन्म कटक से साठ कि. मी. दूर कनकपुर पाटणा ग्राम में हुआ था। इस गाँव का नाम अब तेंतुलिया पदा हो गया है। यहाँ मुनि गोसाई मठ स्थित है, जहाँ सरला दास ने अपनी सारस्वत साधना की थी। पास में ही झंकड़ गाँव है, जहाँ कवि की आराध्या सरलादेवी का मन्दिर था। सरला दास ने अपमे 'महाभारत' के 'द्रोणपर्व' में अपने पिता का नाम यशोवन्त बतलाया है तथा 'मध्यपर्व' के एक छन्द में परशुराम को अपना अग्रज बतलाया है। कवि ने स्वयं अनेक बार उल्लेख किया है कि उन्हें विद्यालय जाने का कभी अवसर नहीं मिला था और उन्हें औपचारिक शिक्षा एकदम नहीं मिली थी। उनके पिता भी अशिक्षित थे और अन्य परिजनों को भी पढ़ने लिखने का अवसर नहीं मिला था। उनके 'महाभारत' के द्रोणपर्व से संकेत मिलता है कि उनके बेटे-पोते थे; किन्तु वे भी आजीविका के लिए खेती पर ही आश्रित थे। इस प्रकार, सरला दास का

समग्र परिवार पाठशाला की पढ़ाई से दूर था; फिर भी इस शूद्रमुनि ने तीन-तीन महाकाव्य रच डाले।

सरला दास के तीनों महाकाव्य तीन भिन्न आख्यानों पर आधृत हैं। 'विलंका रामायण' भगवान् श्रीराम तथा सहस्रशिर रावण के युद्ध का वर्णन है, जिसमें जगज्जननी जानकी की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए उन्हें समस्त शक्ति का स्रोत बतलाया गया है। 'महाभारत' कवि का कालजयी श्रेष्ठ महाकाव्य है, जो मूल महाभारत पर आधृत होते हुए भी उसी प्रकार स्वतन्त्र ग्रन्थ है, जिस प्रकार कवि कालिदास का 'रघुवंश' रामायण की कथा पर आश्रित होते हुए भी स्वतन्त्र महाकाव्य माना जाता है। सरला दास के 'महाभारत' में भी व्यास कृत महाभारत की तरह 18 पर्व हैं, किन्तु अनेक नामों में अन्तर है। इस महाकाव्य में भी कौरव पाण्डवों के युद्ध की कथा है; किन्तु कवि ने इसमें इतनी सामयिक एवं प्रासंगिक कथाएँ अपनी ओर से जोड़ी है कि कवि की कल्पनाशीलता एवं काव्य-कौशल की प्रशंसा करनी पड़ती है। यहाँ कतिपय दृष्टान्त प्रस्तुत कर कवि की प्रवीणता पर प्रकाश डाला जा रहा है।

भगवान् जगन्नाथ के विग्रह की प्रतिष्ठा के बारे में अनेक कथाएँ हैं। एक विस्तृत कथा सरला दास के महाभारत में भी है, जिसका विस्तृत वर्णन भगवान जगन्नाथ से सम्बद्ध प्रकरण में किया गया है। इस कथा के अनुसार 'जर' नामक व्याध भगवान् श्रीकृष्ण के अ-दग्ध एवं प्लवमान हृदय का अनुसरण करता हुआ पुरी पहुंचा, जहाँ उसने आदिवासी शबरों को उस हृत्पिण्ड की पूजा में मग्न देखा। जब राजा इन्द्रद्युम्न ने विद्यापति नामक एक ब्राह्मण की सहायता से उस विग्रह को बलात् प्राप्त करना चाहा, तब भगवान् स्वयं विलुप्त हो गये और उन्होंने स्वप्न में राजा को समझाया कि शबर भक्तों से राजा के संघर्ष के कारण ही उन्हें अन्तर्हित होना पड़ा। जब उन्होंने दारु-खण्ड में प्रकट होने की बात कही, तब राजा का समग्र सैन्य बल उस दारु-खण्ड को नहींखींच पाया। तब भगवान् ने पुनः स्वप्न में राजा को बतलाया कि मैं बाहु-बल या धन-बल से आकृष्ट नहींहो सकता। यदि एक छोर का स्पर्श विद्यापति और दूसरे का स्पर्श शबर प्रमुख करें तो मैं स्वतः ऊपर आ जाऊँगा। इस कथा में ब्राह्मण विद्यापति

और शबर प्रमुख को समकक्ष रख कर कवि ने सामाजिक समता का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है।

सरला दास की सशक्त लेखनी का कमाल है कि कवि ने जिन व्यवस्थाओं को अनुचित और अन्यायपूर्ण समझा, उन्हें महाभारत की अवान्तर कथाओं के माध्यम से इस कौशल के साथ प्रस्तुत किया, जिन्हें पढ़कर पाठक मुग्ध हो जाते हैं। सरला दास का महाभारत तत्कालीन उत्कल समाज का दर्पण है; राष्ट्रीय गाथा है; कृषक-वर्ग का गौरव-गान है। शरशय्या पर लेटे भीष्म पितामह से युधिष्ठिर को कृषकों के हित में कवि ने जो उपदेश दिलाया है, वह कवि के कृषकोन्मुखी कल्याण-भावना का प्रतीक है। सरला दास अपनी आर्थिक विपन्नता में भी सन्तुष्ट रहने वाले व्यक्ति हैं। वे इसे भी सरला देवी की कृपा ही मानते हैं। उन्हें अपनी सामाजिक हीनता की भी कोई चिन्ता नहींहै; उन्हें स्थानीय भाषा में भी धार्मिक महाकाव्य रचने में भी संकोच नहीं है। वे अपनी परिस्थितियों एवं परिवेश से पूर्णतः आत्म-सन्तुष्ट ही नहीं हैं; बल्कि गौरवान्वित भी हैं, क्योंकि वे अपने आपको सरला देवी की कृपा की छत्रच्छाया में पूर्णतः सुरक्षित मानते हैं। वे 'चण्डी-पुराण' में संकेत देते हैं कि वे बेटों एवं

पोतों के साथ सुखपूर्वक जीवन यापन कर रहे हैं तथा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति अन्नपूर्णा कर रही है। सरला देवी की असीम कृपा उन पर थी; इसलिए सुशिक्षित नहींहोने पर भी उन्होंने तीन-तीन महाकाव्यों की रचना उस समय ओड़िया भाषा में कर डाली; जिस समय उसमें लोकगीतों, लोकगाथाओं एवं कुछेक राज्य-लेखों के अतिरिक्त कोई महत्त्वपूर्ण साहित्य नहींथा। सरला दास की शैली का अनुकरण परवर्ती कवियों ने किया। इनकी वर्णन-शैली एवं विषय-चयन का प्रभाव विशेष रूप से पंचसखा सम्प्रदाय के बलराम दास, जगन्नाथ दास और अच्युतानन्द दास पर पड़ा, जिन्होंने ओड़िया भाषा में क्रमशः रामायण, भागवत और हरिवंश की रचना कर इसके साहित्य को समृद्ध बनाया।

पंचसखा भक्ति-आन्दोलन

जिस प्रकार महाराष्ट्रमें वारकरी सन्तों ने तथा काशी में कबीर एवं रैदास ने भक्ति-आन्दोलन का सूत्रपात किया, उसी प्रकार उड़ीसा में पंचसखा भक्तों ने जगन्नाथजी की आराधना को आधार मानकर 15-16 वींशताब्दी में सामाजिक पुनरुत्थान का ऐसा सघन अभियान चलाया कि सामाजिक समरसता की स्थापना में अत्यन्त सहजता आयी। सामाजिक समरसता के इस पावन यज्ञ के पाँच पुराधाओं के नाम थे- भक्त बलराम दास, भक्त अच्युतानन्द दास, भक्त जगन्नाथ दास, भक्त यशोवन्त दास तथा भक्त अनन्त दास। इनमें जगन्नाथ दास को छोड़कर शेष सब शूद्र वर्ण के थे। इनमें से सबने अपने मूल जातिबोधक उपाधियों का त्यागकर अपने नाम के साथ दास लिखना प्रारम्भ किया। जगन्नाथ दास ने 'मिश्र', बलराम दास ने 'महापात्र', अच्युतानन्द ने 'खूटी' तथा यशोवन्त ने 'मलिक' दास लिखकर शूद्रत्व के साथ अपना तादात्म्य स्थापित किया। वे अपने आपको ईश्वर का दास मानते थे तथा शूद्र कहलाने में आनन्द का अनुभव करते थे। भक्त बलराम दास शूद्रमुनि के नाम से ही अभिहित हो गये थे। इन भक्तों की मान्यता थी कि भगवद्भक्ति की प्राप्ति में शूद्र मानसिकता ही श्रेष्ठ है। भक्त अच्युतानन्द दास ने लिखा है- 'एक क्षत्रिय को अपने संघर्षशील स्वभाव के कारण सच्चा भक्त होने में कठिनाई है, ब्राह्मण के मन में बैठा श्रेष्ठता का भाव उसे सच्चा ईश्वरभक्त नहींबनने देता तथा वैश्य के मन में सदैव व्यापारी वृत्ति होने के कारण वह भी ईश्वर की भक्ति आसानी से नहींकर सकता। ईश्वर की कृपा से सभी की सेवा करने के कारण शूद्र के अन्दर स्वभाव से ही इतनी विनम्रता तथा शालीनता आ गयी है कि वह ईश्वरभक्ति के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है तथा शूद्र के मन में किसी प्रकार का अहंभाव भी तो नहीं है।'

अच्युतानन्द दास ने यह भी स्पष्ट किया था कि हमने शूद्र कहलाना इसलिए भी उपयुक्त समझा कि हम नहीं चाहते कि हमारे साथी जनों में कुछ उच्च तथा कुछ हीन भाव का अनुभव करें।

(क) बलराम दास

पंचसखा भक्तों में बलराम दास वरिष्ठ थे। उन्होंने रामायण का अनुवाद श्जगमोहन रामायणश के नाम से किया। इसके मंगलाचरण में जगन्नाथजी की प्रसन्नता के लिए स्तुति की ताकि रामायण के सभी सात काण्डों की रचना निर्विघ्न सम्पन्न हो जाये

संसार निमन्ते मुहिं घोसाइ पुनि पुनि तुंभे मोते दया कर देब सुलपानी।

सातकाण्ड रामायण करिते मोर मन नीलगिरि नाथ मोते होइब प्रसन्न॥

बलराम दास ने श्जगमोहन रामायणश और

'श्रीमद्भगवद्गीता' में अपना संक्षिप्त परिचय दिया है। तदनुसार महामन्त्री सोमनाथ महापात्र इनके पिता थे तथा माता का नाम मनमयी था। 'उद्धव-गीता' से यह ज्ञात होता है कि रथयात्रा महोत्सव के समय से गुंडिचा मन्दिर में भगवान जगन्नाथ को अपने गीतों से प्रसन्न करते थे। उनके अन्य ग्रन्थों से भी जगन्नाथ के प्रति उनकी उत्कट भक्ति का परिचय मिलता है। वे चौतन्य महाप्रभु एवं राजप्रतापरुद्र देव के समकालीन थे। उन्होंने लम्बी आयु पायी थी और उनकी मृत्यु से समूचे उत्कल में शोक छा गया; पुरी में तो सन्नाटा था। माधव पट्टनायक ने वैष्णव लीलामृत में लिखा है कि जैसे विशाल पीपल के पेड़ के गिरने से जोसे लोग काँप जाते हैं, बलराम दास की मृत्यु से भी ऐसा ही कुछ हुआ। 17वीं शती के लेखक ईश्वर दास ने 'चैतन्य भागवत' में लिखा है कि जब चैतन्य महाप्रभु बलराम दास के गाँव जजपुर होकर जा रहे थे, तब बलराम दास महाप्रभु से मिले थे और महाप्रभु ने उन्हें 'रामतारक परब्रह्म' मन्त्र से दीक्षित किया था। राजा प्रतापरुद्रदेव ने बलराम दास को रामायण और गीता के लेखक के रूप में कटक में सार्वजनिक रूप से सम्मानित किया धा। चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें नन्द मठ का पर्यवेक्षक बनाया था। स्थानीय परम्परा के अनुसार बलरामदास का देहावसान पुरी जाने के मार्ग में कोणार्क मन्दिर के पास बेगुनिया नामक स्थल पर हुआ था। वहीं उनकी समाधि है। वहाँ प्रतिवर्ष उनकी स्मृति में मेला लगता है। पार्श्ववर्ती ग्राम एरबंग में जगन्नाथजी का एक मन्दिर है, जिसे बलराम दास ने ही बनवाया था, जब वे वार्द्धक्य के कारण पुरी जाने में सक्षम नहीं थे। उस जगन्नाथ मन्दिर का नाम अब भी बलराम मन्दिर है।

बलरामदास बहुत सारे ग्रन्थों के रचयिता थे। ओड़िया 'जगमोहन रामायण' की अतिशय लोकप्रियता के कारण बलरामदास का नाम प्रत्येक घर में श्रद्धा के साथ लिया जाता है। परवर्ती राम-काव्य के कवियों पर उनका प्रभूत प्रभाव पड़ा। 'भाव-समुद्र' और 'वट आकाश' में उनकी उत्कट जगन्नाथ भक्ति का परिचय मिलता है। उनके साहित्य का पढ़ा जाना इतना व्यापक है कि उत्कलवासी 'कमल-लोचन चौंतीस' से शिक्षा आरम्भ कर 'जगमोहन रामायण' और 'उद्धव गीता' से ज्ञानार्जन करते हैं तथा श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ कर महाप्रस्थान की कामना रखते हैं। भक्त बलराम दास ने गीता का भी अनुवाद किया और एक स्वतन्त्र ग्रन्थ 'लक्ष्मीपुराण' लिखा जो उड़िया में अत्यन्त लोकप्रिय है।

इस 'लक्ष्मीपुराण' की मौलिक कथा के अनुसार लक्ष्मीजी धनवानों में भक्ति का अभाव देखकर दु:खी रहती थीं; एक दिन वे श्रिया नाम की अपनी चाण्डाल भक्तिन पर कृपा करके उसके घर गयीं। श्रिया की भक्ति से अभिभूत होकर वे उसके घर अक्सर जाने लगीं। उन्होंने सभी भक्तों के घरों में जाना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन जगन्नाथ और बलराम ने उन्हें श्रिया के घर में देख लिया। इस पर बलराम विशेष रूप से कुपित हुए। उन्होंने जगन्नाथ से कहा कि लक्ष्मी का इस प्रकार चाण्डाल के घर में अक्सर जाना तथा सभी वर्गों के घरों में भ्रमण करना उचित नहींहै। उन्होंने लक्ष्मीजी को श्री मन्दिर में प्रवेश नहीं करने दिया। लक्ष्मीजी ने नगर के बाहर विश्वकर्माजी से एक विशाल महल बनवा लिया और वैतालों की सहायता से श्रीमन्दिर की सारी सम्पत्ति और अन्न भाण्डार अपने यहाँ मँगवा लिया,

जिसके कारण जगन्नाथजी और बलरामजी को भोजन के लाले पड़ गये। दोनों भिखारी का वेष बनाकर भीख माँगने निकले, लेकिन कहींकुछ खाने को नहीं मिला। भीख माँगते माँगते वे लक्ष्मीजी के महल में पहुँचे, जहाँ उन्हें वे सभी पक्वान्न मिले जो लक्ष्मीजी के हाथों मिलते थे। तब वे दोनों लक्ष्मीजी के पास जाकर मन्दिर में लौट चलने का आग्रह करने लगे। लक्ष्मीजी ने लौटने के लिए दो शर्ते रखीं। पहली शर्त यह थी कि वे विना किसी भेद-भाव के सभी वर्गों के भक्तों के घरों का भ्रमण करती रहेंगी यानी लक्ष्मी की कृपा सभी वर्गों पर समान रूप से होगी। इसका निहितार्थ यह हुआ कि सम्पत्ति किसी विशेष वर्ण तक सीमित नहीं रहेगी। लक्ष्मीजी की दूसरी शर्त थी कि जगन्नाथ मन्दिर का महाप्रसाद ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सभी एक साथ पंगत में बैठकर ग्रहण करेंगे और भोजन करते समय हाडी(चाण्डाल) के पत्तल से अन्न लेकर खायेंगे। भोजन के बाद वे हाथ धोने के पहले माथे पर उसे रगड़ेंगे। जगन्नाथजी ने लक्ष्मीजी की सभी शर्ते मान लीं और कामना की कि इस व्यवस्था के लिए लक्ष्मीजी का यश युग-युग में बना रहे

चाण्डालु ब्राह्मण जाए खिया खोइ हेवे।

समस्ते खेना हस्त जाले आ धोएवे हाडी हस्तारु ब्राह्मण छड़ाइ खैवे खाइ सरी से हस्तक मुण्डे पोछु थिबे हेउ हेउ बोलि अज्ञदेले महाबाहु जुए जुगे लक्ष्मी एगो तुम्भ जश रहु।

इस प्रकार बलराम दास ने श्लक्ष्मी-पुराणश में वर्णित लक्ष्मीजी की व्यवस्था के अनुसार जगन्नाथ मन्दिर में महाप्रसाद के ग्रहण में कोई छुआछूत, भेद-भाव नहीं बरता जाता है। छुआछूत के विरोध में इतना स्पष्ट उद्घोष दुर्लभ है। तबसे ऐसी परम्परा पड़ी कि श्रीमन्दिर में सभी जातियों के लोग साथ-साथ भोजन करते हैं। लक्ष्मीजी के चाण्डाल-परिवार में निवास की स्मृति में मार्गशीर्ष (अगहन) मास के प्रति बृहस्पतिवार के दिन लोग घर को विशेष रूप से सजाकर लक्ष्मीजी के आगमन की प्रतीक्षा में उत्सव मनाते हैं। बलराम दास इतने क्रान्तिकारी थे कि उन्होंने जगन्नाथ मन्दिर के परिसर में ही अछूत बाउरियों को वेदान्त पढ़ाना प्रारम्भ किया। इस पर ब्राह्मणों ने घोर विरोध किया। 'वेदान्त-सार गुप्त गीता' में बलराम दास ने लिखा है कि वेदान्त पर मेरा प्रवचन सुनकर ब्राह्मणों ने उन्हें बहुत फटकार लगायी है कि तुम सोमनाथ शूद्र के पुत्र हो; अत्यन्त हीन हो; फिर भी कैसे वेदान्त विषय पर प्रवचन आ द:साहस करते हो

त शुनि विप्र कले कालि बहुत देले मोटे गालि
तू सोमनाथ शूद्र सूत तु कहु वेदान्त चरित
तू छर मूढ़ हीन जन तु कहु वेदान्त विधान॥

बलराम दास के पिता सोमनाथ महापात्र शूद्र थे। मन्दिर में भगवान् के लिए फूल-माला पहुँचाना उनका परम्परागत कार्य था।

इन पंचसखा भक्तों ने चातुर्वर्ण्य के आधार पर वर्णों की श्रेष्ठता एवं हीनता की धारणा को ध्वस्त किया। भक्त बलराम दास ने उड़ीसा में अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ कर यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि प्रभु-प्राप्ति के अधिकतम ज्ञान का अधिकार सबका है; यह वर्ण-विशेष का एकाधिकार नहींहो सकता।

(ख) अच्युतानन्द दास

बलराम दास की तरह अच्युतानन्द दास भी शूद्रों के हित में सदैव संघर्ष करते रहे। अपने ओड़िया हरिवंश पुराण में उन्होंने अपने बारे में लिखा है

शूद्र मध्ये गणना मुहित अलाय।

दीक्षा गोति पाय याचि गोप कुले थाय॥

मेरी गणना शूद्र के रूप में होती है और गोप कुल में पालन-पोषण के अनन्तर मेरी दीक्षा हुई है।

भक्त अच्युतानन्द दास ने अपनी पुस्तक 'गुप्तगीता' में चातुर्वर्ण्य की परिभाषा पुरुष-सूक्त से भिन्न दी। उन्होंने वैश्य को समाज के नेत्र, क्षत्रिय को उसके कान, ब्राह्मण को श्वास तथा शूद्र को समाज का मुख माना। सब उसी दैवी प्रकाश से उत्पन्न हैं

वैश्य तो नयन अताइ क्षत्रिय श्रबनकु कहि ब्राह्मण नसारा पबन शूद्रे जे मुखरे प्रमान

एमंतो चारि जाति कहि ज्योतिमाध्यारू जन्म होई॥

'गुरु-भक्ति-गीता' में अच्युतानन्द दास ने एक और क्रान्तिकारी व्यवस्था दी। गुरु से दीक्षा लेते समय उन्होंने चारों वर्गों से एक एक व्यक्ति की उपस्थिति अनिवार्य बना दी। साथ ही उन चारों के के साथ समान व्यवहार करने की कभी व्यवस्था दी। उन्होंने वर्गों के वर्णन के क्रम में ब्राह्मण को तृतीय स्थान पर रखा। यह व्यवस्था ब्राह्मणवादी आधिपत्य को चुनौती देनेवाली थी। उन्होंने 'शून्य संहिता' में भी यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि ईश्वरीय अनुभूति में हीनवर्ण या अवर्ण होना बाधक नहींहै।।

मल्लाहों के कल्याण के लिए उन्होंने कैवर्त गीता लिखी। कुछ लोग उन्हें 'अहो' कुल का मानते हैं, जिसका अर्थ 'करण' या 'गोपाल' लिया जा सकता है। उनका जन्म कटक जिले के तिलकना ग्राम में हुआ था। उनके जन्म-वर्ष के बारे में मतभेद है। एस. एन. दास ने उनका जन्म 1483 ई0 में माना है। उनके पिता का नाम दीनबन्धु था, जो राजा प्रतापरुद्र देव के अधिकारी थे। उन्हें खूटिया की उपाधि मिली थी और वे जगन्नाथ मन्दिर में वस्त्र और शृंगार सामग्री की आपूर्ति करते थे। अच्युतानन्द का बचपन रहस्यों से घिरा था। बालपन में वे मूढ़-जैसा व्यवहार करते थे। चिन्तित पिता बच्चे को पुरी लेकर गये जहाँ चैतन्य महाप्रभु के सान्निध्य में उसमें ऐसी चेतना का संचार हुआ कि वह एक महान् सन्त और कवि बना। चैतन्य महाप्रभु के कहने पर सनातन गोस्वामी ने अच्युतानन्द को दीक्षा दी। गुरु के निर्देश पर ज्ञानमिश्रित भक्त के प्रचार हेतु अच्युतानन्द ने देश के अनेक भागों का भ्रमण किया।

भक्त अच्युतानन्द दास ने हरिवंश का अनुवाद उड़िया भाषा में करके इसे जन सुलभ बनाया। पंचसखा भक्तों की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने हिन्दू धर्मग्रन्थों का अनुवाद जनभाषा (उड़िया) में करके धर्मशास्त्रों को जन-जन में लोकप्रिय बनाया। 'हरिवंश' के अतिरिक्त अच्युतानन्द ने 22 उपवंश, 36 संहिताएँ , 78 गीताएँ तथा 27 वंशानुचरित लिखे। गोपालकों के लिए उन्होंने बहुत सारी पहेलियों की रचना की, जो आज भी लोकप्रय हैं। उनकी अन्य रचनाओं में 'गुरुभक्ति गीता', 'शून्य संहिता', 'अनाकार संहिता', 'परमगुप्त गीता', 'शिशुवेद-सप्तरंग', 'अनाकार ब्रह्म-यंत्र' इत्यादि हैं। उड़ीसा में आज भी उनकी अतिशय लोकप्रियता है।

(ग) यशोवन्त दास

यशोवन्त दास के पिता का नाम जगु दास था। इनकी माता रेखा देवी थी। ये बचपन से ही आस्तिक एवं धर्म परायण थे। चैतन्य महाप्रभु के सान्निध्य में इनकी भक्ति और बलवती हुई। इनकी विरचित पुस्तकें हैं- 'लोई-गीता', 'प्रेमभक्ति-गीता', 'ब्रह्म-गीता' और 'गोविन्दचन्द्र गीता'।।

गोविन्दचन्द्र गीता प्रसिद्ध योगी गोविन्दचन्द्र

की गाथा है। अपनी माता मुक्ता दवी के परामर्श पर राजकुमार गोविन्दचन्द्र ने राजपाट, पत्नी, पुत्र का परित्याग करके योगी का जीवन प्रारम्भ किया। योग का ज्ञान इन्होंने अपने दलित गुरु हाडिया से प्राप्त किया था। हाडिया सफाई करनेवाले भंगी समाज के थे; फिर भी गुरु के रूप में प्रतिष्ठित थे। यशोवन्त दास के विरचित गीत योगी संन्यासियों द्वारा जिस प्रकार गाये जाते रहे हैं, उससे करुण एवं वैराग्य का वातावरण बनता रहा है। यशोवन्त दास ज्ञान-मिश्र भक्ति के प्रचारक रहे। राजा रुद्र प्रतापदेव भी इनसे अत्यधिक प्रभावित थे। इनके चमत्कारों के बारे में अनेक किंवदन्तियाँ हैं।

(घ) जगन्नाथ दास

पंचसखा सन्तों में यही एक मात्र जन्मना ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम भगवान् दास और माता का नाम पद्मावती था। पिता भगवान् दास पुराण-वाचक (पुराण-पंडा)थे। जगन्नाथ दास का जन्म सन् 1490 ई. में भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि तिथि को हुआ था। वे अत्यन्त मेधावी बालक थे; किन्तु इनकी अल्पायु में ही इनके माता पिता चल बसे। ये जगन्नाथ मन्दिर के परिसर में ही कल्प-वट के नीचे पुराण की कथा सुनाने लगे। माता की इच्छा के अनुसार इन्होंने 18 वर्ष की उम्र में ही 1508 ई. में ओडिया में भागवत की रचना प्रारम्भ कर दी थी।

1509-10 में जब चैतन्य महाप्रभु ने इनके भागवत के कुछ अंशों को सुना, तब वे इससे बहुत प्रभावित हुए। जगन्नाथ दास चैतन्य महाप्रभु से दीक्षा लेना चाहते थे; किन्तु चैतन्य महाप्रभु ने इन्हें वैष्णव महाकवि बलराम दास से दीक्षा लेने का परामर्श दिया। चैतन्य महाप्रभु ने ही इन्हें 'अतिबडि' (अतिशय महान्) की उपाधि दी थी।

अन्य भक्तकवि अतिबड़ि जगन्नाथ दास ने भागवत का अनुवाद उड़िया भाषा में किया और भगवान जगन्नाथ को ही भागवत का कृष्ण मानकर ऐसा सुन्दर वृत्तान्त प्रस्तुत किया कि यह हर उड़िया भाषी के हृदय में समा गया। पूरे उत्कल प्रदेश में भागवत पढ़ने-सुनने के लिए सायंकाल गाँवों में 'भागवत-टुंगी' के आयोजन की परम्परा रही है जिसमें सभी जातियों के लोग एकत्र होकर भागवत के अमृत का रसास्वादन करते हैं। ओड़िया भागवत की अतिशय लोकप्रियता के कारण संकीर्ण मनोवृत्ति वाले पण्डितों ने इन्हें काफी तंग किया और तरह तरह की अपवाहें फैलाकर उन्हें काफी तंग किया; किन्तु इस भक्त कवि के समक्ष उनकी दाल न गली। जगन्नाथ दास ने संस्कृत एवं उड़िआ में विशाल साहित्य का सृजन किया। उनकी संस्कृत रचनाओं में 'कृष्णभक्ति कल्पलता', 'नित्यगुप्त माला', 'उपासना-शतक', 'नीलाद्रि-शतक', 'श्रीराधारसमंजरी', 'प्रेमसुधा- निधि' और 'नित्याचार उपासना विधि' प्रमुख हैं तथा ओड़िया ग्रन्थों में 'शैवागम', 'गोलोकसारोद्धार', 'सोल चौपदी', 'ब्रह्माण्ड-भूगोल', 'तुल भिन' एवं 'अर्थ कोइलिएव' प्रमुख हैं।

जगन्नाथ दास ने जगन्नाथ एवं कृष्ण भगवान् की स्तुति में भी बहुत भजनों की रचना की और ब्रह्मज्ञान विषय पर भी बहुत कुछ लिखा। कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण-परिवार में जन्म पाकर भी ये सामादिक समता के सिद्धान्तों को सदैव प्रतिपादित एवं प्रसारित करते रहे।

(ङ) अनन्त दास

अनन्त दास पंचसखा सम्प्रदाय की अन्तिम कड़ी हैं इन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति में भजन

तत्त्व तथा शून्य-ब्रह्म की प्रशस्ति में 'अनाकार शब्द' की रचना की।

पंचसखा भक्तों ने समाज में नैतिकता का साम्राज्य स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इनमें बलराम दास वरिष्ठ एवं श्रेष्ठ थे। जगन्नाथ दास ने भी उनसे ही दीक्षा ली थी और चैतन्य महाप्रभु ने भी उन्हें गुरु माना था। पंचसखा धर्म को साधारण जनों के बीच सुलभ कराया और यही उनकी लोकप्रियता का मुख्य कारण था।

महिमा पन्थ और भीमा भोई

जातिप्रथा के विरोधी महिमा-पन्थ के प्रवर्तक मुकुन्द दास थे। यद्यपि महिमा पन्थ के अनुयायी उन्हें 'अयोनिज सम्भूत' मानते हैं, तथापि यह मान्यता अधिक ग्राह्य लगती है कि उनका जन्म 18वीं शती के अन्त में हुआ। 1826 ई० में पहली बार पुरी में वे प्रकट हुए थे, जहाँ वे आचारी वैष्णव के रूप में रहते थे और अपने शरीर पर वे भस्म लगाये रहने के कारण धूलिया बाबाजी के नाम से जाने जाते थे। उनका जन्म ब्राह्मण कुल में पूर्व बौध रियासत में पिता अनन्त मिश्र के घर में हुआ था। कुछ दिन पुरी में रहने के बाद वे ढेकानाल चले गये, जहाँ कपिला पहाड़ी पर एक महादेव मन्दिर के पास उन्होंने अपना आश्रम बनाया। वहाँ बारह वर्षों तक वे केवल फल खाकर अपनी साधना में लगे रहे; अतः फलाहारी बाबा के नाम से अभिहित होने लगे। उसके बाद बारह वर्षों तक वे केवल दूध और पानी पीकर रहे; अतः लोग उन्हें क्षीर निराहारी बाबा कहने लगे। उस पहाड़ी पर वे स्थानीय महादेव की पूजा कर भोग लगाते तथा आगत यात्रियों का सेवा सत्कार करते। जंगल-झाड़ को काट कर सुन्दर बगीचा लगाते तथा उस स्थल को रमणीय बनाने में मग्न रहते। इन सबसे उनकी अच्छी ख्याति हो गयी और धनकनल के महाराजा की माता उनके प्रति अतिशय श्रद्धा रखने लगीं। वह उनके आहार के लिए प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा में दूध भेजने लगीं। लोगों की आस्था जमने लगी कि महादेव से उनकी गुप्त वार्ता होती है। कपिला की पहाड़ियों में ही उन्हें 1862ई. में सिद्धि मिली और उन्होंने महिमा पन्थ की स्थापना की। अब ये मूर्ति-पूजा का विरोध करने लगे। उन्होंने संसार के रचयिता को निर्गुण निराकार 'अलेख' या महिमा नाम दिया। वहाँ से वे बालसिंघ आये, जहाँ उन्होंने जगन्नाथ दास को अपना पहला शिष्य बनाया और उनका नाम बदल कर गोविन्द दास रखा। गोविन्द दास में असाधारण आयोजन शक्ति थी। वे मुकुन्द दास के सबसे समर्थ समर्थक एवं घनिष्ठ सहयोगी सिद्ध हुए। इन दोनों के सघन अभियान के कारण महिमा सम्प्रदाय लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करने लगा। बालसिंघ से वे दारुथेगा आये, जहाँ उन्होंने एक 'ढुंगी' (प्रवचन-स्थली) बनायी और वहीं महिमा पन्थ के सिद्धान्तों का प्रचार करने लगे।

यही वे मुकुन्द दास से महिमा गोसाईं बने और उनमें दैवी शक्तियों का आरोपण हुआ। 1862 ई. में महिमा गोसाईं एवं गोविन्द दास की मुलाकात भीमा भोई से ग्रामडीहा गाँव में हुई और गरीब कान्धा जन-जाति में जन्मे भीमा भोई को महिमा सम्प्रदाय में दीक्षा मिली। दीक्षा के बाद इस किशोर में काव्य-धारा का ऐसा प्रस्फुटन हुआ कि वह सम्प्रदाय का प्रवक्ता, कवि एवं गायक बना। 1867 ई. में दारुथेंगा में गोविन्द दास का देहावसान हो गया, जिससे महिमा सम्प्रदाय के प्रचार की गति कुछ कम हुई; किन्तु भीमा भोई की कविताओं से इसकी प्रसिद्धि पुनः बढ़ती गयीमहिमा गोसाईं ने निराकार

ब्रह्म के पूजन पर बल दिया। इस निराकार ब्रह्म की तुलना बौद्ध धर्म के श्शून्यश से भी की जा सकती है। मकुन्द दास ने अपने नये अवतार में कौपीन एवं कण्ठी का त्याग कर दिया था और दिगम्बरता से बचने के लिए कुम्भीपट धारण करते थे।

महिमा पन्थ की मान्यताओं में प्रमुख हैं

1. यह सम्प्रदाय जाति प्रथा में विश्वास नहीं करता।

2. यह सम्प्रदाय मूर्ति-पूजा में आस्था नहीं रखता।

3. महिमा-सम्प्रदाय के अनुयायी यज्ञोपवीत धारण नहींकरते; तिलक या अन्य कोई वैष्णव प्रतीक भी नहीं दर्शाते।

4. वे रात्रि में भोजन नहीं करते, न ही अधिक नमकीन या मीठा या खट्टा भोजन ग्रहण करते।

5. वे किसी पशु या पक्षी को पालतू बनाकर बन्धन में नहीं रखते।

6. वे ज्योतिषियों, वेश्याओं तथा समाज के अन्य अनेक वर्गों से भिक्षा नहीं लेते।

7. वे किसी क्रीड़ा में भाग नहीं लेते; किसी छतरी के नीचे नहीं बैठते और किसी संन्यासिनी को साथ नहीं रखते।

8. वे गेरुआ वस्त्र धारण करते हैं, जटा रखते हैं, कन्धे से एक झोली लटकाये हुए रहते हैं उनके सिर पर तालपत्र का छत्र हमेशा रहता है। आँखें नीचे झुकाये हुए भीमा भोई का भजन गाते हुए चलते हैं। सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय दण्डवत् प्रणाम करते हैं, माथे पर धूलि या भस्म लगाते हैं; मिट्टी के पात्र में या पत्तल पर भोजन करते हैं। खुले आकाश के नीचे धुनी रमाकर सोते हैं।

9. वे एक दिन में एक ही घर से भिक्षा ग्रहण करते हैं तथा एक गाँव में एक ही दिन ठहरते हैं।

10. वे सत्य एवं अहिंसा का पालन करते हैं तथा आत्मा की अमरता एवं पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं।

दर्शन के स्तर पर महिमा पन्थ केवल परम ब्रह्म में विश्वास रखता है; अतः कुछ विद्वान् इसे शुद्ध अद्वैतवाद मानते हैं। कुछ अन्य विद्वानों को यह पन्थ जैनधर्म का परिष्कृत रूप दीखता है, तो कुछ विद्वान् इसे बौद्ध धर्म का ही एक रूप मानते हैं, क्योकि इसमें महिमा का तादात्म्य बुद्ध से भी कहा गया है और इसके प्रवर्तक मुकुन्द दास को प्रबुद्ध गोसाई कहा गया है। इस प्रसग में महिमा धर्म के मर्मज्ञ विद्वान् भागीरथी नेपक ने इसे वेदान्त दर्शन का प्रतिबिम्ब मानते हुए इसे सनातन धर्म की परिधि में ही सुधारवादी पन्थ माना है। इसे सत्य सनातन धर्म भी कहा जाता है।

महिमा धर्म के सबसे बड़े प्रवक्ता भीमा भोई हुए। इनका जन्म सम्भलपुर जिले के रेढ़ाखोल अंचल के पास काँकड़ापोड़ा गाँव में कन्धा जनजाति के परिवार में हुआ था। उन्होंने उपनिषद् के अत्यन्त कठिन विचारों को सरल, संगीतमय और अनलंकृत भाषा में अभिव्यक्त किया। फलतः आज भी ये सरल भजन और गीत करोड़ों हृदयों की धड़कनें बने हुए हैं। प्रत्येक सन्ध्या को तम्बूरे ओर करताल की ध्वनि के साथ ये गीत ओड़ीसा के गाँवों में गाये जाते हैं। औपनिषदिक गृहस्थ ऋषियों की भाँति भीमा भोई भी निराकार ब्रह्म के शुष्क विषय को जिस सरसता के साथ प्रस्तुत करते हैं, उससे दलित सन्त कवि के प्रति सब श्रद्धापूर्वक नतमस्तक हो जाते हैं।

***

श्रीकृष्ण की गोलोक-सहचारिणी राधा

श्रीभागवतानन्द गुरु*

श्रीकृष्ण की लीलाओं में राधा उनकी नित्य सहचारिणी हैं, किन्तु कई लोग राधा को काल्पनिक मानकर अनेक प्रकार के आक्षेप लगाते रहे हैं। सत्य यह है कि अनेक पुराणों में राधा का विशद वर्णन मिलता है। इन वर्णनों को पढ़ते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि श्रीकृष्ण की सारी व्रजलीला उनकी आठ वर्ष की अवस्था से पहले समाप्त हो चुकी है। यहाँ राधातत्त्व पर प्रमाणों के साथ भागवतानन्द गुरु का आलेख संकलित किया गया है।

सनातनी समाज में परब्रह्म के उपासक उनके अनेक सगुण एवं कल्याणकारी स्वरूपों की आराधना करते हैं। प्रत्येक स्वरूप में कहीं न कहीं प्रकृति तथा पुरुष के तत्त्व का समावेश होता है। कुछ स्वरूप उग्र हैं तो कुछ सौम्य। लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भगवान् प्राधान्य देवताओं में अग्रगण्य हैं, जिनके लौकिक कार्यकाल एवं दिव्य गोलोकादि धाम की लीलाओं का कीर्तन भक्तजन सदैव करते हैं। जिस प्रकार से सूर्य की पहचान उसके प्रकाश से है, अमृत की पहचान उसके माधुर्य से है, वैसे ही श्रीकृष्ण की पहचान स्वयं श्रीराधारानी हैं।

कुछ दुराग्रह से युक्त अज्ञानियों ने यह भ्रम फैला रखा है कि श्रीराधारानी का चरित्र काल्पनिक है एवं इसे बाद में जयदेव कवि ने बलपूर्वक समाज के सामने प्रस्तुत किया है। 'श्रीमद्भागवत' तथा 'महाभारत' में श्रीराधारानी का प्रत्यक्ष वर्णन न होने से भी उन लोगों की इस कुधारणा को अस्थायी बल प्राप्त हो जाता है। सनातन धर्म में भागवतसंज्ञक पांच ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण, श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, श्रीमहाभागवत देवी-उपपुराण, श्रीअनुभागवत, सनत्कुमार उपपुराण एवं श्रीमूलभागवत, कालिका उपपुराण। इनमें श्रीमद्भागवत तथा उसके सारभूत श्रीअनुभागवत को पुरुषप्रधान एवं श्रीमद्देवीभागवत तथा उसके सारभूत श्रीमहाभागवत को प्रकृतिप्रधान ग्रन्थ माना जाता है। श्रीमूलभागवत को उभयप्रधान कहते हैं।

पराशक्ति की प्रधानता रखने वाले श्रीमद्देवीभागवत तथा श्रीमहाभागवत में श्रीराधारानी का लौकिक एवं पारलौकिक चरित्र अद्भुत प्रकार से वर्णित है। श्रीमद्भागवत के अन्त तथा श्रीमद्देवीभागवत के प्रारम्भ में ही वर्णित पुराणसूची में पद्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण आदि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। उपर्युक्त पुराणों में भी श्रीराधाजी का चरित्र विस्तार से वर्णित है। तन्त्रशास्त्र

*श्रीमन्महामहिम विद्यामार्तण्ड श्रीभागवतानंद गुरु, धार्मिक उपदेशों, शोध लेखन, षड्यंत्रभेदक धारणाओं, लोकोपकारी गतिविधियों एवं व्याख्यानों के लिए प्रसिद्ध, सम्प्रति. टेंडर, रातु, रांची, झारखंड।

होयसलेश्वर मन्दिर में राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति
हलेविद, कर्णाटक, 12वीं शती

में जहाँ श्रीराधातन्त्र, माहेश्वरतन्त्र, गौतमीयतन्त्र आदि राधातत्त्व का विवेचन करते हैं तो वैदिक वाङ्मय में ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद से सम्बन्धित तीन प्रकार के 'राधोपनिषत्' का वर्णन भी विद्वज्जन किया करते हैं।

जिस प्रकार से चन्दन से उसकी सुगन्ध, सूर्य से उसका प्रकाश, दुग्ध से उसकी शुभ्रता एवं समुद्र से उसका गाम्भीर्य भिन्न नहीं है, वैसा ही सम्बन्ध श्रीराधाकृष्ण के मध्य समझना चाहिए। महाभागवत में शिवजी के किसी कल्प में राधिकावतार का वर्णन है।

गणेश जन्मोत्सव में परशुरामजी भी आये थे, उन्हें भी देवी पार्वती ने बड़े ही प्रेम से पुत्रवत् स्नेह किया। इस घटना को देखकर वहाँ गोलोक से पधारी हुई श्रीराधिकाजी ने कितनी सुन्दर बात कही है –

त्वं चाहमावयोर्देवि भेदो नैवास्ति कश्चन।
विष्णुस्त्वमहमेवास्मि शिवो द्विगुणतां गतः॥
शिवस्य हृदये विष्णुर्भवत्या रूपमास्थितः।
मम रूपं समास्थाय विष्णोश्च हृदये शिवः॥
एष रामो महाभागे वैष्णवः शैवतां गतः।
गणेशोऽयं शिवः साक्षाद्वैष्णवत्वं समास्थितः॥
एतयोरावयोः प्रभवोश्चापि भेदो न दृश्यते।

(ब्रह्माण्डपुराण, मध्यभाग, अध्याय – 42, श्लोक – 48-51)

राधाजी ने देवी पार्वती को कहा – 'हे देवि! मुझमें और आपमें कोई भेद नहीं है। आप विष्णु हैं और मैं शिव हूँ। शिवजी के हृदय में विष्णुजी, आपके (पार्वती) रूप से निवास करते हैं एवं मेरा (राधा) का रूप धारण करके शिवजी, विष्णु भगवान् के हृदय में निवास करते हैं। ये राम (परशुरामजी) वैष्णव होकर आज शैवत्व को प्राप्त कर गए हैं एवं शिवात्मज गणेशजी वैष्णवत्व में प्रतिष्ठित हो गये हैं। इन दोनों में भी हमलोगों की ही भाँति कोई भेद नहीं दिखता है।'

स्वयं वैष्णवावतार श्रीपरशुरामजी का निम्न भाव देखें –

या राधा जगदुद्भवस्थितिलयेष्वाराध्यते वा जनैः
शब्दं बोधयतीशवक्त्रविगलत्प्रेमामृतास्वादनम्।
रासेशी रसिकेश्वरी रमणदृन्निष्ठानिजानन्दिनी
नेत्री सा परिपातु मामवनतं राधेति या कीर्त्यते॥

(ब्रह्माण्डपुराण, मध्यभाग, अध्याय – 43, श्लोक – 8)

जो संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय के समय 'राधा' नाम से आराधिता होती हैं, जो लोगों

को ब्रह्मशब्द का बोध कराती हैं एवं अपने स्वामी श्रीकृष्ण के अधरामृत का पान करती हैं, वह रास की स्वामिनी, रसिकों की स्वामिनी, विहार को उत्सुक एवं अपने तात्त्विक आनन्दमय विग्रह में स्थित, सबों का मार्गदर्शन करनी वाली राधा सदैव मेरी रक्षा करे।

एक प्रमाण और द्रष्टव्य है –

राधा भजति तं कृष्णं स च ताञ्च परस्परम्।
उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च॥

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, प्रकृतिखण्ड, अध्याय – ४८, श्लोक – ३८)

राधा श्रीकृष्ण को भजती हैं तथा कृष्ण श्रीराधा का भजन करते हैं। उन दोनों में सदैव साम्यभाव है, ऐसा सन्तों का वचन है।

राधा शब्द का विवेचन तो ऐसे बहुत प्रकार से शास्त्रों में उपलब्ध होता है। श्रीहितहरिवंश महाप्रभु, स्वामी श्रीकरपात्रीजी आदि अभिनव भक्तराजश्रेष्ठों ने अनेकों शास्त्रीय प्रमाणों के साथ उनकी व्याख्या भी की है, किन्तु मैं एक दो परिभाषाएं उद्धृत करता हूँ।

राशब्दोच्चारणाद् भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभाम्।
धाशब्दोच्चारणाद्दुर्गे धावत्येव हरेः पदम्॥
कृष्णवामांशसम्भूता राधा रासेश्वरी पुरा।
तस्याश्चांशांशकलया बभूवुर्देवयोषितः॥
रा इत्यादानवचनो धा च निर्वाणवाचकः।
ततोऽवाप्नोति मुक्तिं च तेन राधा प्रकीर्तिता॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड, अध्याय – ४८, श्लोक – ४०–४२)

'रा' शब्द के उच्चारण से भक्त को अत्यन्त दुर्लभा मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है और धा शब्द के उच्चारण से श्रीहरि के धाम के प्रति उसका शीघ्र ही गमन होता है। पूर्वकाल में श्रीकृष्ण के बायें भाग से उद्भूत रास की अधिष्ठात्री राधाजी के ही अंशांशकला से सभी अन्य देवताओं की स्त्रियां प्रकट हुई हैं। 'रा' शब्द से स्वीकार का बोध होता है और 'धा' शब्द से मोक्ष का। अपने भक्त की प्रार्थना को स्वीकार करके उसे मोक्ष देने वाली देवी को ही राधा नाम से कहा गया है।

श्रीकृष्ण को विश्वात्मा कहा गया है। उन्हें ही विश्वाधार, जगदीश अथवा इन्द्रियों के स्वामी हृषीकेश भी कहा जाता है। संसार की आत्मा श्रीकृष्ण हैं तथा श्रीकृष्ण की आत्मा राधाजी है। शिव जी का वचन है –

तत्प्राणाधिष्ठातृदेवीं भज राधां परात्पराम्।
कृपामयीप्रसादेन शीघ्रं प्राप्नोति तत्पदम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड/अध्याय – 55, श्लोक – 5)

उन (श्रीकृष्ण) के प्राणतत्त्व की स्वामिनी परात्परा राधाजी की आराधना करो, उन्हीं कृपामयी की प्रसन्नता से तुम उस परमपद को शीघ्र ही प्राप्त कर लोगे।

वैष्णवास्तां महालक्ष्मीं परां राधां वदन्ति ते ।
अर्द्धाङ्गां च महालक्ष्मीः प्रिया नारायणस्य च॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड, अध्याय – ५४, श्लोक – ९१)

विष्णु के उपासक उसी शक्ति को महालक्ष्मी, परा एवं राधा कहते हैं जो नारायण की अर्धांगिनी एवं प्रियतमा हैं।

सनातन धर्म में माससम्बन्धी व्रतों में कार्तिकमास के व्रत का विशेष महत्त्व है। अनादि काल से प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु इसे करते आ रहे हैं, जिसमें श्रीराधाजी के अर्चन का भी शास्त्रोक्त विधान है। व्रतियों का समूह निम्न प्रकार से प्रार्थना करता है–

व्रतिना कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय - 93, श्लोक - 10)

हे श्रीहरि! कार्तिकमास में विधिपूर्वक स्नान किये हुए मुझ व्रती के द्वारा दिये गए इस अर्घ्य को आप राधाजी के साथ स्वीकार करें।

जब भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धवजी के ज्ञानभास को मर्दित करने के उद्देश्य से उन्हें वृन्दावन भेजा था, उस समय भक्ति और ज्ञान का तत्त्व गोपियों के माध्यम से प्राप्त करके वापस लौटते समय उन्होंने राधारानी से ही अनुमति माँगी थी।

उद्धव उवाच

परिपूर्णतमे कृष्णे वृषभानुवरात्मजे ।
गन्तुमाज्ञा देहि मह्यं नमस्तुभ्यं व्रजेश्वरि॥
प्रतिपत्रं देहि शुभे श्रीकृष्णाय महात्मने।
तेन तं च प्रणम्याशु समानेष्ये तवान्तिकम्॥

उद्धव जी कहते हैं - हे सभी कलाओं से पूर्ण, कृष्ण की शक्ति, वृषभानु की श्रेष्ठ पुत्री! हे व्रज की स्वामिनी! आप मुझे अब प्रस्थान की आज्ञा दें। महान् आत्मा वाले श्रीकृष्ण के लिए आप कोई प्रतिपत्र (जवाबी चिट्ठी) दें जिसके माध्यम से मैं उन्हें प्रणाम करके शीघ्र ही आपके मन की बात बता दूंगा।

श्रीनारद उवाच

अथ राधा लेखनीं च नीत्वा पात्रं मषेस्त्वरम् ।
समाचारं चिन्तयन्ती तावदश्रूणि सुस्रुवुः॥
यद्यत्पत्रं समानीतं राधया लेखनीयुतम्।
तत्तदार्द्रीकृतं जातं नयनाम्बुजवारिभिः॥
अश्रुप्रवाहं मुञ्चन्तीं कृष्णदर्शनलालसाम्।
उद्धवो विस्मयन्प्राह राधां कमललोचनाम्॥

नारद जी कहते हैं - इसके बाद राधा ने कलम और दवात लाकर शीघ्र ही पत्र की विषयवस्तु सोचना प्रारम्भ ही किया था कि उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे। वे जिस भी कागज (अथवा भोजपत्र आदि) एवं कलम को सामने रखती थीं, वह उनके नेत्रों से निकले जल के द्वारा भीग जाता था। श्रीकृष्ण के दर्शन कब होंगे, ऐसी मन में कामना करते हुए वे रोने लगीं, इस प्रेम को देकर उद्धव जी विस्मित हो गए एवं उन्होंने कमल के समान विकसित नेत्रों वाली राधाजी से कहा -

उद्धव उवाच

कथं लिखसि राधे त्वं कथं दुःखं करोषि हि।
सर्वां तस्मै वदिष्यामि व्यथां त्वल्लेखनं विना॥

हे राधिके! आपको कुछ भी लिखने की आवश्यकता ही क्या है? आप दुःख भी क्यों करती हैं? आपके हृदय की सारी बात मैं आपके लिखे बिना ही जाकर श्रीकृष्ण को कह दूँगा।

(गर्गसंहिता, मथुराखण्ड, अध्याय - 18, श्लोक - 17-22)

इस प्रकार से हम देखते हैं कि अन्याय वेदव्यास एवं व्यासेतर ऋषियों की वाणी में भी श्रीराधाजी का विशद वर्णन प्राप्त होता है। राधाजी के माहात्म्य को समझने और उनके प्रति द्वेषभाव रखने वाले दुरात्माओं की गति का संकेत प्राप्त करने के लिये हमें निम्न प्रमाण को ध्यान में रखना चाहिए।

आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं परात्परम्।
स एव पण्डितो योगी गोलोकं याति लीलया॥
आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं परात्परम्।
जगतां भवती माता परमात्मा पिता हरिः।
पितुरेव गुरुर्माता पूज्या वन्द्या परात्परा॥
भजते देवमन्यं वा कृष्णं वा सर्वकारणम्।

पुण्यक्षेत्रे महामूढो यदि निन्दति राधिकाम्॥
वंशहानिर्भवेत्तस्य दुःखशोकमिहैव च।
पच्यते निरये घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय – 124, श्लोक – 09–13)

पहले राधा बोलकर दूर परात्पर कृष्ण का नाम लेना चाहिए। जो ऐसा करता है, वही पण्डित है, वही योगयुक्त है, अतएव पहले राधा का नाम लेकर फिर कृष्ण का नाम लेना चाहिए। संसार की माता आप ही हैं (राधातत्त्व) और श्रीहरि परम आत्मा एवं पिता हैं। माता भी पिता के ही समान परात्परा, पूजनीया और वन्दनीया हैं। जो मूर्ख राधाजी की निन्दा करते हुए पुण्यदायक तीर्थों में दूसरे देवता अथवा सबों के निर्माता श्रीकृष्ण की भी आराधना करता है, उसके वंश की हानि होती है। वह इसी संसार में दुःख एवं शोक प्राप्त करने के अनन्तर सूर्य एवं चन्द्रमा की उपस्थिति पर्यन्त घोर नरक में दुःख भोगता है।

इस प्रकार से हमें सभी ग्रन्थों एवं महात्माओं के वचनों का अनुशीलन करते हुए श्रीराधा महारानी के प्रति श्रद्धा एवं समर्पण का भाव रखकर उनकी आराधना करनी चाहिए। राधा को जो प्रिय नहीं होता है, वह श्रीकृष्ण को भी प्रिय नहीं होता है। राधा की आराधना न करने वाले को कृष्णपूजन का भी अधिकार नहीं है।

कृष्णार्चाया नाधिकारो यतो राधार्चनं विना।
वैष्णवैस्सकलैस्तस्मात् कर्तव्यं राधिकार्चनम्॥

(श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्कन्ध – 09, अध्याय – 50, श्लोक – 16)

क्योंकि श्रीराधाजी की पूजा किये बिना मनुष्य को श्रीकृष्ण की पूजा करने का भी अधिकार नहीं होता है, इसीलिए वैष्णवों का कर्तव्य है कि वे राधाजी की पूजा अवश्य करें।

आगे कहते हैं– **राध्नोति सकलान् कामांस्तस्माद्राधेति कीर्तिता।**

सभी कामनाओं को पूर्ण करने से ये 'राधा' कहलाती हैं।

एकमात्र श्रीराधा की प्रसन्नता भी जिसपर हो जाये, शेष सभी देवता उसपर स्वभावतः ही प्रसन्न हो जाते हैं, ऐसा समझकर श्रीकृष्णप्रीति की कामना से श्रीराधारानी की भक्ति अवश्य ही करनी चाहिए, यही मानवमात्र का कर्तव्य है।

***

पाठकों से निवेदन

पटना के प्रसिद्ध महावीर मन्दिर (हनुमान मन्दिर) के द्वारा धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय चेतना की मासिक पत्रिका धर्मायण का प्रकाशन 1990 ई. से ही किया जा रहा है। वर्तमान में कोरोना महामारी की स्थिति में इसे केवल वेब-पत्रिका के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं। इस पत्रिका को https://mahavirmandirpatna.org/dharmayan/ **पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है तथा डाउनलोड कर निःशुल्क वितरित किया जा सकता है।**

इस पत्रिका को पढकर अपनी प्रतिक्रिया mahavirmandir@gmail.com **अथवा ह्वाट्स एप संख्या 9334468400 पर भेजें, ताकि पत्रिका को हम आपके लिए अधिक से अधिक उपयोगी बना सकें।**

श्रीकृष्णजन्म की कथा

पं. लल्लू लाल कृत 'प्रेमसागर' (1774 ई.)से उद्धृत

'प्रेमसागर' के 5वें संस्करण का मुखपृष्ठ

जनभाषा के माध्यम के माध्यम से भागवत पर आधारित श्रीकृष्णकथा की कथा लालच दास कृत 'हरिचरित्र', मनबोध कृत 'कृष्णजन्म' आदि प्राचीन शैली के काव्यों के द्वारा जन मानस में फैल चुकी थी। 1810 ई. में बुकानन ने 'पूर्णिया रिपोर्ट' में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। 18वीं शताब्दी में हिन्दुस्तानी भाषा पढाने के उद्देश्य से ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों के द्वारा कुछ रचनाएँ लिखवायी गयीं, जिनमें कृष्णकथा से सम्बद्ध रचनाओं में चतुर्भुज मिश्र ने ब्रजभाषा में 'ब्रजविलास' की रचना की, जिसका हिन्दी गद्यानुवाद प. लल्लूलाल ने 'प्रेमसागर' के नाम से संवत् 1830 यानी 1774ई. में किया। गद्य में होने के कारण इसकी अधिक लोकप्रियता देखने को मिलती है। यही कारण है कि सन् 1842 ई.में कलकत्ता से इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन हुआ और 1882 ई. में नवल किशोर प्रेस से इसका पाँचवाँ संस्करण प्रकाशित हुआ था। भूमिका से पता चलता है कि हिन्दुस्तानी भाषा के विभिन्न पाठ्यक्रमों में भी इसे सम्मिलित किया गया था।

यहाँ धर्मायण के पाठकों के लिए 'प्रेमसागर' का आरम्भिक अंश संकलित किया गया है। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म होने तक की कथा ली गयी है। पुनः प्रकाशन के क्रम में हिन्दी के आधुनिक विराम चिह्नों का प्रयोग किया गया है। प्राचीन प्रकाशन में अनेक शब्दों को एक साथ छापने की प्रवृत्ति थी, उसे अर्थानुसार अलग किया गया है तथा जहाँ द्वित्त्व के बोध के लिए 2 अंक का प्रयोग होता था उसके स्थान पर पुनः उस शब्द को लिखा गया है। शेष वर्तनी यथावत् रखी गयी है। आशा है कि इतना परिवर्तन करने पर आधुनिक पाठकों के लिए अर्थावबोध में कोई बाधा नहीं पहुँचेगी। पाँचवें संस्करण में प्रकाशित चित्र भी यहाँ प्रदर्शित किये गये हैं।

इतनी कथा कह शुक्रदेवमुनि ने राजा परीक्षित से कहा- "हे राजा में उग्रसेन के भाई देवककी कथा कहता हूं कि उसके 4 बेटे और 6 बेटियां थीं। सो छहाँ बसुदेव को ब्याह दी। सातवी देवकी हुई जिसके होने से देवताओं को प्रसन्नता हुई और उग्रसेन के भी दश पुत्र थे, पर सबसे कंस ही बड़ा था। जबसे जन्मा तबसे यह उपाधि करने लगा कि नगर-नगर जाय छोटे लड़के को पकड़ लावे और पहाड़ की खोह में मूँद मार-मार डाले। जो बड़े होंय, तिनकी छाती पर चढ़ गला घोंट जी निकाले। इस दुख से कोई न

निकलने पावे सब अपने लड़कों को छिपाये प्रजा कहै– "दुष्ट यह कंस उग्रसेन का नहीं है बंश, कोई महापापी जन्म ले आया है, जिसने सारे नगर को सताया है।" यह बात सुन उग्रसेन ने उसे बुलाकर बहुत–सा समझाया पर इसका कहना कंस के जी में कुछ भी न आया। तब दुख पाय पछताय के कहने लगा कि ऐसे पूत होने से मैं अपूत ही क्यों न हुआ। कहते हैं जिस समय कुपूत घर में आता है, तिसी समय यश और धर्म जाता है।

जब कंस आठ बर्ष का हुआ तब मगधदेश पर चढ़ गया। वहाँ का राजा जरासंध बड़ा योधा था, तिस्से मिल इसने मल्लयुद्ध किया, तो उसने कंस का बल लख लिया तब हार मान अपनी बेटी छोटी दो ब्याह दीं। पहिले मथुरा में आया और उग्रसेन से बैर बढ़ाया। एक दिन कोप कर अपने पिता से बोला कि तुम राम नाम कहना छोड़ दो और महादेव का जप करो, विसने कहा– "मेरे तो कर्ता दुःखहर्त्ता वही हैं, जो उनको नहीं भजूंगा तो अधर्मी हो कैसे भवसागर पार हूंगा।" यह सुन कंस ने खुनसाय बाप को पकड़कर सारा राज्य ले लिया और नगर में डोंडी फेर दी कि कोई यज्ञ, दान, तप, धर्म और राम का नाम लेने न पावे। ऐसा अधर्म बढ़ा कि गौ ब्राह्मण और हरि के भक्त दुःख पाने लगे और धरती अति बोझ से मरने लगी। जब कंस सब राजाओं का राज्य ले चुका तब एक दिन अपना दल ले राजा इन्द्र पर चढ़ चला। तहाँ मंत्री ने कहा कि महाराज इन्द्रासन बिन तप किये नहीं मिलता। आप बलका गर्ब न करिये, देखा गर्व ने रावण कुम्भकरण को कैसा खो दिया कि जिनके कुल में एक भी न रहा।"

इतनी कथा कह शुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा जब पृथ्वी पर अति अधर्म होने लगा तब पृथ्वी दुःख पाय घबराय गाय का रूप बन डकारती देवलोक में गई और इन्द्र की सभा में जा शिर झुकाय उसने अपनी सब पीर कही कि 'महाराज संसार में असुर अति पाप करने लगे; तिन के डर से धर्म तो उठ गया। यदि मुझे आज्ञा हो तो नरपुर छोड़ रसातल को जाऊँ।' तब इन्द्र सब देवताओं का साथ ले ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा सुन सब को महादेव के निकट ले गये। महादेव भी सुन सब को साथ ले वहाँ गये, जहाँ क्षीरसमुद्र में नारायण सो रहे थे। उनको सोते जान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र सब देवताओं को साथ ले खड़े हो हाथ जोड़ बिनती कर देवस्तुति करने लगे–

"महाराजाधिराज, आपकी महिमा कौन कहि सके। मत्स्यरूप हो वेद डूबते निकाले। कच्छप रूप बन पीठ पर गिरि धारण किया। बाराह बन भूमि को दांत पर रख लिया। बामन होके राजा बलि को छला। परशुराम अवतार ले क्षत्रियों को मार पृथ्वी कश्यप मुनि को दी। रामावतार तब महादुष्ट रावण का बध किया और जब–जब तुम्हारे भक्तों को दैत्य दुःख देते हैं तब–तब आप उनकी रक्षा करते हैं। नाथ, अब कंस के सताने से अति ब्याकुल हो पुकार करती है। उसकी बेग सुध लीजे, असुरों को मार साधुओं को सुख दीजे, ऐसे गुण गाय देवताओं ने कहा।"

तब आकाशबाणी हुई सो ब्रह्मा देवताओं को समझाने लगे– "यह जो बाणी भई सो तुम्हें आज्ञा दी है कि तुम सब देवी–देवता ब्रजमण्डल जाय मथुरा नगरी में जन्म लो। पाछे चार स्वरूप धर हरि भी अवतार लेंगे। बसुदेव के घर देवकी की कोख में और बाललीला कर नन्द–यशोदा को सुख देंगे।" इसी रीति से ब्रह्मा ने जब बुझा के कहा तब सुर, मुनि, किन्नर और गन्धर्ब सब अपनी–अपनी स्त्रियों समेत जन्म ले–ले ब्रजमण्डल में यदुबंशी और गोप कहाये

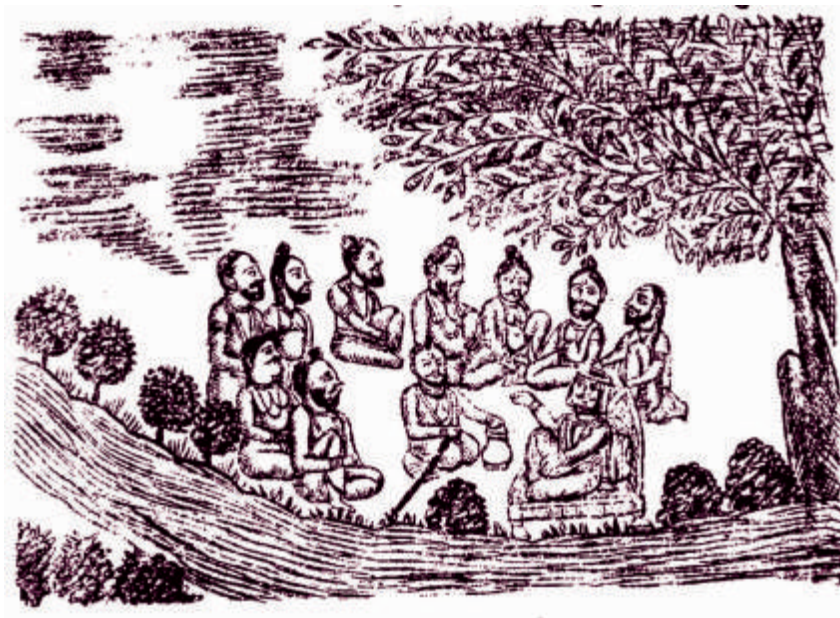

और जो चारों वेद की ऋचाएँ थीं, सो ब्रह्मा से कहने लगी कि 'हम भी गोपी हो ब्रज में अवतार लें, बासुदेव की सेवा करें।' इतना कह वे भी ब्रज में आई और गोपी कहलाई। जब सब देवता मथुरापुरी में आ चुके तब क्षीरसमुद्र में हरि बिचार करने लगे कि पहिले तो लक्ष्मण हों बलराम, पीछे बासुदेव हो मेरा नाम, भरत प्रद्युम्न, शत्रुघ्न अनिरुद्ध, और सीता रुक्मिणी का अवतार लें।

इति श्रीलालकृते प्रेमसागरे
पीड़ाबंध प्रथमोऽध्यायः॥१॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा- "हे महाराज, कंस तो इस अनीति से मथुरा में राज्य करने और उग्रसेन दुख भरने लगा। देवक जो कंस का चाचा था, उसकी कन्या देवकी जब ब्याहने योग्य हुई तब उसने जा कंस से कहा कि यह लड़की किसको दें। वह बोला- "सूरसेन के पुत्र बसुदेव को दीजिये।" इतनी बात सुन्ते ही देवक ने एक ब्राह्मण को बुलाय शुभलग्न मुहर्त ठहराय सूरसेन के घर टीका भेज दिया। तब तो सूरसेन भी बड़ी धूमधाम से बरात ले, सब देश-देश के नरेश साथ ले, मथुरा में बसुदेव को ब्याहन आये।

बरात नगर के निकट आई सुन उग्रसेन देवक और कंस अपना दल ले आगे बढ़ नगर में ले गये। अति आदर-मान से अगवानी कर जनवासा दिया। खिलाय-पिलाय सब बरातियों को मढ़े के नीचे ले जा बैठाया और वेद की बिधि से कंस ने बसुदेव को कन्यादान दिया। तिसके यौतुक में पन्द्रह सहस्र घोड़े, चार हजार हाथी, अठारह सौ रथ, दास-दासी अनेक दे कंचन के थाल बस्त्र आभूषण रत्न जटित से भर-भर अनगिनत दिये और सब बरातियों को भी अलंकार सहित बागे पहिराय सब मिल पहुंचावने को चले। तिस समय देववाणी हुई कि 'अरे कंस जिसको तू पहुंचावने चला है, तिसका आठवां गर्भ तेरा काल उपजेगा। उसके हाथ तेरी मौत है।' यह सुनते ही कंस डर के मारे कांपने लगा और क्रोध कर देवकी के झोंटे पकड़ रथ से नीचे खेंच

लाया और खड्ग हाथ में ले दांत पीस-पीस कहने लगा कि जिस पेड़ को जड़ ही से उखाड़िये, तिसमें फूल-फल काहे को लगेगा। अब इसी को मारूं तो निर्भय राज्य करूं। यह देख-सुन बसुदेव मन में कहने लगे कि इस मूर्ख ने सन्ताप दिया। ये पुण्य और पाप नहीं जानता है, जो में अब क्रोध करता हूं, तो काज बिगड़ेगा। तिससे इस समय क्षमा करनी ही योग्य है।

जो बैरी खैंचे तरवार करै साधु तिस की मनुहार।
समझ मढ़ सोई पछताय जैसे पानी आग बुझाय॥

यह शोच समझ बसुदेव कंस के सन्मख जा हाथ जोड़कर कहने लगे कि 'सुनो पृथ्वीनाथ, तुम-सा बली संसार में कोई नहीं और सब तुम्हारी छांह तले बसते हैं। ऐसे शूर हो स्त्री पर शस्त्र करना यह अति अनुचित है और बहिन के मारने से महापाप होता। तिसपर भी मनुष्य अधर्म तो करे जो जानें कि मैं कभी न इस संसार की तो यही रीति है। इधर जन्मा, उधर मरा, करोड़ यत्न से पाप-पुण्य कर कोई इस देह को पोषै, पर यह कभी अपनी न होयगी। धन योबन राज्य भी न आवेगा काम, इससे मेरा कहा मान और अपनी अबला आधीन बहिन को छोड़ दीजे।' इतना सुन वह काल जान घबराकर और भी झुंझलाया तब बसुदेव शोचने कि यह पापी तो असुर बुद्धि किये अपने हठ की टेक पर है। इसके हाथ से यह बचे सो उपाय किया चाहिये। ऐसे बिचार मन में कहने लगे- 'अब तो इससे यों कह देवकी को बचाऊं कि जो पुत्र होगा सो तुम्हें दूंगा, पीछे किसने देखी है लड़का ही न होय के दुष्ट मरे। यह अवसर तो टले, फिर समझी जायगी।' इस भांति मन में ठान बसुदेव ने कंससे कहा- "महाराज तुम्हारी मृत्यु इसके पुत्र के हाथ न होगी; क्योंकि मैंने एक बात ठहराई है कि देवकी के जितने लड़के होंगे, तितने मैं तुम्हें ला दूंगा। यह बचन मैंने तुमको दिया।" ऐसी जब बसुदेव ने कही तब समझ के कंस ने मान ली और देवकी को छोड़ कहने लगे- "हे बसुदेव, तुमने अच्छा बिचार किया, जो ऐसे भारी पाप से मुझे बचा लिया।" इतना कह विदा किये और वे अपने घर गये।

कितने एक दिन मथुरा में रहते भये। जब पहला पुत्र देवकी के हुआ तब बसुदेव ले कंस पे गये और रोता हुआ लड़का आगे धर दिया। देखते ही ने कहा- "बसुदेव! तुम बड़े सत्यवादी हो, मैंने आज जाना, क्योंकि तुमने मुझसे कपट न किया। निर्मोही हो अपना पुत्र ला दिया, इस्से मुझे कुछ डर नहीं है। यह बालक मैंने तुझे दिया।" इतना सुन बालक ले दण्डवत् कर बसुदेवजी तो अपने घर आये और उसी समय नारद मुनिजी ने जाय कंस से कहा- "राजा! तुमने यह क्या किया, जो बालक उलटा फेर दिया। क्या तुम नहीं जानते कि बसुदेव की सेवा करने को सब देवताओं ने ब्रज में आय जन्म लिया है और देवकी के आठवें गर्भ में श्रीकृष्ण जन्म ले सब राक्षसों को मार भूमिका भार उतारेंगे।" इतना कह नारद मुनि ने आठ लकीरें खेंच गिनवाई। जब आठ ही आठ गिनती में आई, तब डरकर कंस ने लड़के समेत बसुदेवजी को बुला भेजा। नारद मुनि तो यों समझाय बुझाय चले गये और कंस ने बसुदेव से बालक ले मार डाला। ऐसे जब पुत्र होय, तब बसुदेव ले आवें और कंस मार डाले। इसी रीति से छः बालक मारे। तब सातवें गर्भ में जो शेष रूप श्रीभगवान् हैं, तिन्होंने आ बास लिया।

यह कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा- "महाराज नारद मुनिजी ने जो अधिक पाप करवाया, तिसका ब्यौरा समझाकर कहो। जिस्से मेरे मन का संदेह जाय।" श्रीशुकदेवजी बोले- "राजा

नारदजी ने तो अच्छा बिचारा कि यह अधिक-अधिक पाप करें, तो श्रीभगवान् शीघ्र ही प्रकट होवें।

इति श्रीलालकृते प्रेमसागरे देवकी बिवाह बालकबधो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

फिर शुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा, जैसे गर्भ में हरि आये और ब्रह्मादिक देवता ने गर्भस्तुति करी और देवी जिस भाँति बलदेवजी को गोकुल ले गई, तिसी रीति से कथा कहता हूँ-

"एक दिन राजा कंस अपनी सभा में आय बैठा और जितने दैत्य उसके थे, उनको बुलाकर कहा- "सुनो, सब देवता पृथ्वी में जन्म ले आये हैं, तिन्हीं में कृष्णा भी अवतार लेगा, यह भेद मुझसे नारद मुनि समझाय के कह गये हैं। इस्से अब उचित यही है कि तुम जाकर सब यदुबंशियों का ऐसा नाश करो जो एक भी जीता न बचे।"

यह आज्ञा पा सबके सब दण्डवत् कर चले। नगर में आ ढूँढ-ढूँढ पकड़-पकड़ लगे बांधने। खाते-पीते, खड़े-बैठे, सोते-जागते, चलते-फिरते, जिसे पाया तिसे न छोड़ा। घेर के एक ठोर लाये ओ जला-जला, डुबो-डुबो, पकड़-पकड़, दुःख दे-दे सबको मार डाला। इसी रीति से छोटे-बड़े, भयावने, भाँति-भाँति के भेष बनाये नगर-नगर, गांव-गांव, गली-गली, घर-घर खोज-खान लगे मारने और यदुवंशी दुःख पाय-पाय देश छोड़-छोड़ जी ले-ले भागने।

उसी समय बसुदेव की जो और स्त्रियां थीं सो भी रोहिणी समेत मथुरा से गोकुल में आईं, जहां बसुदेवजी के परममित्र नन्दजी रहते थे। उन्होंने अति हित से आशा-भरोसा दे रक्खा। वे आनन्द से रहने लगी। जब कंस देवताओं को यों सताने और अति पाप करने लगा, तब विष्णु ने अपनी आंखों से एक माया उपनाई सो हाथ बांध सन्मुख आई। उससे कहा- "तू अभी संसार में जा, मथुरापुरी के बीच अवतार ले जहां दुष्ट कंस मेरे भक्तों को दुःख देता है और कश्यप, अदिति जो बसुदेव देवकी हो ब्रज में गये हैं, तिनको मूंद रक्खा है। छः बालक तो उनके कंस ने मार डाले, अब सातवें गर्भ में लक्ष्मणजी हैं, उनको देवकी की कोख से निकाल गोकुल में ले जाकर इस रीति से रोहिणी के पेट में रख दीजो कि कोई दुष्ट न जाने और सब वहां के लोग तेरा यश बखाने।" इस भांति माया को समझाय श्रीनारायण बोले कि 'तू तो पहले जाकर यह कार्य करके नन्द के घर में जन्म ले पीछे बसुदेव के यहां अवतार ले मैं भी नन्द के घर आता हूं।' इतना सुनते ही माया झट मथुरा में आई ओ मोहिनी का रूप बन बसुदेव के गेह में पैठ गई।

जो छिपाय गर्भ हर लिया।
जाय रोहिणी का सो दिया॥
जाने सब पहला प्राधान
भये रोहिणी के भगवान॥

इसी रीति से श्रावण शुदी चौदस बुधबार को बलदेवजी ने गोकुल में जन्म लिया और माया ने बसुदेव देवकी को जा स्वप्न दिया कि 'मैंने तुम्हारा पुत्र गर्भ से ले जाय रोहिणी को दिया है, सो किसी बात की चिन्ता मत कीजो।' सुनते ही बसुदेव देवकी जाग पड़े और आपस में कहने लगे कि 'यह तो भगवान्ने भला किया, पर कंस को इसी समय जताया चाहिये, नहीं तो क्या जानिये पीछे क्या दुःख दे।' यों शोच-समझ रखवालों से बुलाकर कहा। तिन्होंने कंस को जा सुनाया कि 'महाराज देवकी का गर्भ अधरा गया। बालक कुछी न पूरा भया।' सुनते ही कंस घबराकर बोला कि तुम अबकी बेर चौकसी करियो; क्योंकि मुझे आठवेंई गर्भ का डर है, जो आकाशबाणी कह गई है।"

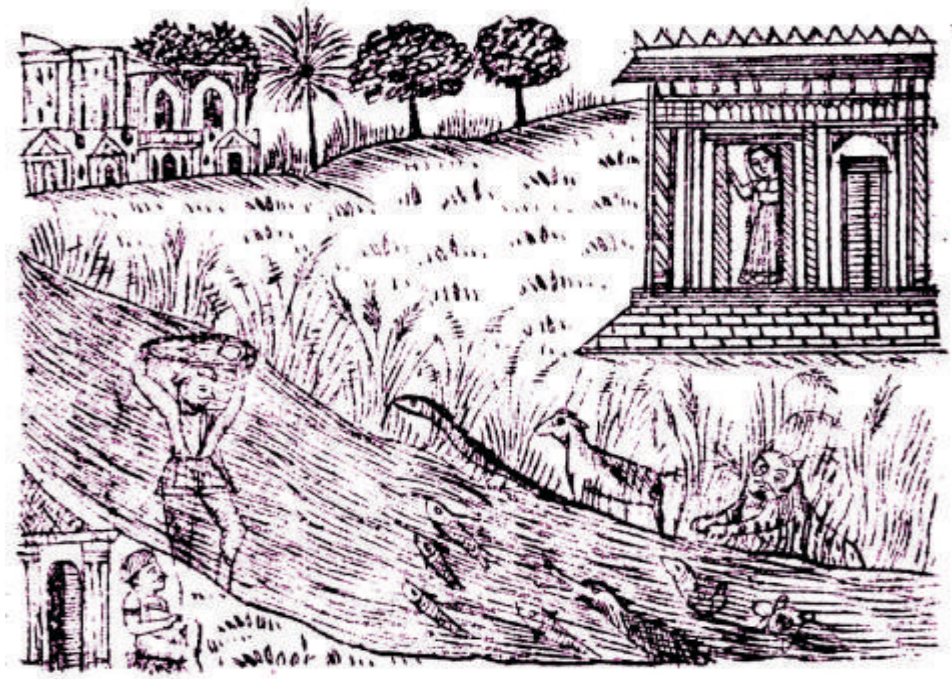

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले– "हे राजन्, बलदेवजी तो यों प्रगटे और जब श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ में आये, तभी माया ने जा नन्द की रानी यशोदा के पेट में बास लिया। दोनों गर्भ से थी कि एक पर्व में देवकी यमुना न्हाने गई। वहां संयोग से यशोदा भी आन मिली तो आपस में दु:ख को चर्चा चली। निदान यशोदा ने देवकी को बचन दे कहा कि 'तेरा बालक मैं अपना तुझे दूँगी।' ऐसे बचन दे यह अपने घर आई और वह अपने गई।

जब कंस ने जाना कि देवकी का आठवां गर्भ रहा, तब जा बसुदेव का घर घेरा। चारों ओर दैत्यों की चौकी बैठा दी और बसुदेव को बुलाकर कि 'अब तुम मुझसे कपट मत कीजो अपना लड़का ला दीजो, तब तो तुम्हारा ही कहना मान लिया था।' ऐसे कह बसुदेव–देवकी के बेड़ी और हथकड़ी पहिराय एक कोठे में मूंदकर ताले पर ताले दे निज मन्दिर में आ मारे डर के उपास कर सो रहा। फिर भोर होते ही वहीं गया, जहां बसुदेव देवकी थे। गर्भ का प्रकाश देख कहने लगा कि 'इसी यमगुफा में मेरा काल है। मार तो डालूं पर अपयश से डरता हूं; क्योंकि अति बलवान हो स्त्री को हनना योग्य नहीं। भला इसके पुत्र ही को मारूंगा।' यों कह बाहर आ गज, सिंह, श्वान और अपने बड़े–बड़े योद्धा वहां चौकी को रखाये और आप भी नित्य चौकसी कर आवे। पर एक पल भी कल न पड़े। जहां देखें तहां आठ पहर चौसठ घड़ी कृष्ण रूप काल ही दृष्टि आवे। तिसके भय से रात दिन चिन्ता में गंवावै। इधर कंस की तो यह दशा थी उधर बसुदेव और देवकी पूरे दिनों महाकष्ट में श्रीकृष्ण ही को मनाते थे कि इसी बीच भगवान्ने आ उन्हें स्वप्न दिया और इतना कह उन के

मन का शोच दूर किया जो हम बेग ही जन्म ले तम्हारी चिन्ता मेटते हैं, तुम अब मत पछिताओ।

यह सुन बसुदेव-देवकी जाग पड़े, तो इतने में ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादिक सब देवता अपने-अपने विमान अधर में छोड़ अलख रूप बन बसुदेव के गृह में आये और हाथ जोड़-जोड़ वेद गाय-गाय गर्भस्तुति करने लगे। तिस समय उनको तो किसी ने न देखा पर वेद की धुनि सबने सुनी यह आश्चर्य देख सब रखवाले अचंभे रहे और बसुदेव देवकी को निश्चय हुआ कि भगवान् वेग ही हमारी पीर हरेंगे।

इति श्रीलालकृतगर्भस्तुति नाम तृतीयोऽध्यायः॥3॥

श्रीशुकदेवजी बोले राजा जिस समय श्री कृष्णचन्द्र जन्म लेने लगे तिस काल सबही के जी में ऐसा आनन्द उपजा कि दुःख नाम को भी न रहा। हर्ष से बन-उपबन हरे हो-हो फलने-फूलने, नदी-नाले सरोवर भरने तिनपर भांति-भाँति के पक्षी कलोल करने और नगर-नगर, गांव-गाँव, घर-घर मंगलाचार होने ब्राह्मण यज्ञ रचने, दशो दिशाके दिग्पाल हर्षने, बादल ब्रज मण्डल पर फिरने, देवता अपने-अपने बिमानों में बैठे आकाश से फूल बरसाने, बिद्याधर, गन्धर्व, चारण, ढोल दमा में भेर बजाय-बजाय गुण गाने और एक और उर्बशी आदि सब अभरा नाच रही थीं कि ऐसा समय भादों बदी अष्टमी बुधबार रोहिणी नक्षत्र में आधी रात को श्रीकृष्णा ने जन्म लिया और मेघबर्ण चन्द्रमुख कमल नयन हो, पीताम्बर, काले, मुकुटधारी बैजयन्ती माला और रत्नजटित आभूषण पहरे, चतुर्भुज रूप किये, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म लिये बसुदेव देवकी को दर्शन दिया। देखते ही अचंभे हो उन दोनों ने ज्ञान से बिचारा तो आदि पुरुष को जाना। तब हाथ जोड़ बिनती कर कहा- "हमारे बड़े भाग्य जो आपने दर्शन दिया और जन्म-मरण का निबेड़ा किया।" इतना कह पहिली कथा सब सुनाई जैसे-जैसे कंस ने दुःख दिया था। तहां श्रीकृष्णचन्द्र बोले- "तुम अब किसी बात को चिन्ता मन में मत करो; क्योंकि मैंने तुम्हारे दुःख के दूर करने ही को अवतार लिया है। पर इस समय मुझे गोकुल पहुंचा दो और इसी बिरियां यशोदा के लड़की हुई है सो कंस को लादो अपने जाने का कारण कहता हूं सो सुनो।

दो०- **नन्द यशोदा तप किया मोहीं सो मन लाय।**
देख्यो चाहत बालसख रहों कछ दिन जाय॥

फिर कंस को मार आन मिलूंगा। तुम अपने मन में धीर्य्य धरो।" ऐसे बसुदेव-देवकी को समझा श्रीकृष्ण बालक बन रोने लगे और अपनी माया फैला दी। तब तो बसुदेव-देवकी का ज्ञान गया और जाना कि हमारे पुत्र भया। यह समझ दश सहस्र गाय मन में संकल्प कर लड़के को गोद में उठा छाती से लगा लिया उसका मुख देख-देख दोनों लम्बी सांसें भर-भर आपस में कहने लगे- "जो किसी रीति से इस लड़के को भगा दीजे, तो कंस पापी के हाथसे बचे।" बसुदेव बोले-

चौ० **विधना बिन राखै नहिं कोई।**
कर्म लिखा सोई फल होई॥
तब कर जोर देवकी कहै।
नन्द मित्र गोकुल में रहै॥
पीर यशोदा हरे हमारी।
नारि रोहिणी तहां तिहारी॥

इस बालक को वहां ले जाओ।" यों सुन बसुदेव अकुला कर कहने लगे कि 'इस कठिन बन्धन से छूट कैसे ले जाऊं।' जो इतनी बात कही तो सब बेड़ी हथकड़ी खुल पड़ी। चारों ओर के किवाड़ खुल गये पहरुये अचेत नींद बश भये। तब तो बसुदेवजी ने श्रीकृष्ण को सूप में रख शिर पर धर

लिया और झटपट ही गोकुल को प्रस्थान किया।

नदी तीर खड़े हो बसुदेव बिचारने लगे कि पीछे तो सिंह बोलता है और आगे अथाह यमुना बह रही हैं। अब क्या करूँ, ऐसा कह भगवान् का ध्यान धर यमुना में पैठे। ज्यों-ज्यों आगे जाते थे, त्यों-त्यों नदी बढ़ती थी, जब नाक तक पानी आया, तब तो ये निपट घबराये, इनको ब्याकुल जान श्रीकृष्ण ने अपना पांव बढ़ाय हुंकार दिया। चरण छूते ही यमुना थाह हुई। बसुदेव पार हो नन्द की पौर पर जा पहुंचे।

वहां किवाड़ खुले पाये भीतर धस के देखें तो सब सेये पड़े हैं। देवी ने ऐसी मोहनी डाली थी कि यशोदा को लड़की के होने की भी सुधि न थी। बसुदेवजी ने कृष्ण को तो यशोदा के निकट सुला दिया और कन्या को ले चट अपना पन्थ लिया। नदी उतर फिर आये, जहाँ बैठी देवकी शोचती थी, तहां कन्या दे वहाँ की कुशल कही।

सुनते ही देवकी प्रसन्न हो बोली- "हे स्वामी, हमें कंस अब मार डाले तो भी कुछ चिन्ता नहीं; क्योंकि इस दुष्ट के हाथ से पुत्र तो बचा।"

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि जब बसुदेव लड़की को ले आये तब किवाड़ ज्यों के त्यों भिड़ गये और दोनों ने हथकड़ियां बेड़ियां पहर ली। कन्या रो उठी। रोने की धुनि सुन पहरुये जागे तो अपने-अपने शस्त्र ले-ले सावधान हो लगे तुपक छोड़ने। तिनका शब्द सुन लगे हाथी चिघाडने, सिंह दहाड़ने और कुत भौंकने। तिसी समय अंधेरी रात के बीच बर्षते में एक रखवाले ने हाथ जोड़ के कंस से कहा- "महाराज तुम्हारा बैरी उपजा।" यह सुन कंस मूर्छित हो गिरा।

इति श्रीलालकृते प्रेमसागरे कृष्ण जन्म कन्या ग्रहण नाम चतुर्थोऽध्यायः।।4।।

बालक का जन्म सुनते ही कंस डरता-कांपता उठ खड़ा हुआ और खड्ग हाथ में ले गिरता-पड़ता दौड़ा। छुटे बालों पसीने में डूबा। धुकुड़-पुकड़ करता जा बहिन के पास पहुंचा। जब उसके हाथ से लड़की छीन ली, तब वह हाथ जोड़ बोली- "ऐ भैया यह कन्या तेरी भानजी है, इसे मत मार यह मेरी पेट पोंछनी है। तूने जो बालक मारे तिनका दुःख मुझे अति सताता है। बिन काज कन्या को मार क्यों पाप बढ़ाता है।" कंस बोला - "जीती लड़की तुझे न दूंगा जो इसे ब्याहेगा सो मुझे मारेगा।" इतना कह बाहर आ ज्यों हीं चाहे कि फिराय कर पत्थर पर पटके, त्यों ही हाथ से छूट कन्या आकाश को गई और पुकार के यह कह गई- "अरे कंस, मेरे पटकने से क्या हुआ। तेरा बैरी कहीं जन्म ले चुका, अब तू जीता न बचेगा।"

यह सुन कंस अछता-पछता वहाँ आया जहाँ बसुदेव देवकी थे। आते ही उनके हाथ पांव को हथकड़ी बेड़ो काट दी और हाथ जोड़कर कहने लगा कि 'मैंने बड़ा पाप किया, जो तुम्हारे पुत्र मारे यह कलङ्क कैसे छूटेगा। किस जन्म में मेरी गति होगी, तुम्हारे देवता झूठे हुए, जिन्होंने कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ में लड़का होगा, सो न हुआ। लड़की हुई, वह भी हाथ से छूट स्वर्ग को गई। अब दया कर मेरा दोष जी में मत रक्खो; क्योंकि कर्म का लिखा कोई मेट नहीं सक्ता। इस संसार में आये सो जीना-मरना, संयोग-बियोग मनुष्य का नहीं छुटता। जो ज्ञानी हैं, सो मरना-जीना समान ही जानते हैं और अभिमानी मित्र-शत्रु कर मानते हैं। तुम तो बड़े साधु सत्यवादी हो, जो हमारे हेतु अपने पुत्र ले आये।'

ऐसे कह जब कंस बार-बार हाथ जोड़ने लगा, तब बसुदेवजी बोले- "महाराज तुम सच कहते हो।

इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं। बिधाता ने यही हमारे कर्म में लिखा था।" यों सुन कंस प्रसन्न हो अति हित से बसुदेव-देवकी को अपने घर ले आया। भोजन करवाय, बस्त्र पहराय बड़े आदर भाव से दोनों को फेर वहीं पहुंचाय दिया और मंत्री को बुला के कहा कि देवी कह गई है, तेरा बैरी जग में जन्मा। इस्से अब देवताओं को जहां पाओ, तहां मारो, क्योंकि उन्होंने मुझसे झूठी बात कही थी कि आठवें गर्भ में तेरा शत्रु होगा। मंत्री बोला- "महाराज उनका मारना क्या बड़ी बात है, वे तो जन्म के भिखारी हैं। जब आप कोपियेगा, तभी वे भाग जांयगे। उनकी क्या सामर्थ्य है जो तुम्हारे सम्मुख हों। ब्रह्मा आठ पहर ज्ञान ध्यान में रहता, महादेव भांग-धतूरा खाय, इन्द्र का कछु तुम पर न बसाय, रहा नारायण तो संग्राम नहीं जानता, लक्ष्मी के साथ रहता है सुख माने।

कन्स बोला- "नारायण को कहां पावें और किस विधि जीतें से कहो।" मंत्री ने कहा- "महाराज, जो नारायण को जीता चाहते हो, तो जिनके घर में आठ पहर उनका बास है, तिनहीं का अब बिनाश करो। ब्राह्मण, वैष्णव, योगी, यती, तपस्वी, संन्यासी, बैरागी आदि जितने हरि के भक्त हैं, तिनमें लड़के से ले बूढ़े तक एक भी जीता न रहे।" यह सुन कन्स ने प्रधान से कहा- "तुम सबको जा मारो।" आज्ञा पाकर मंत्री अनेक राक्षस साथ ले बिदा हो नगर में जा गौ, ब्राम्हण, बालक और हरिभक्तों को छल-बल कर ढूंढ-ढूंढ़ मारने लगा।

इति श्रीलालकृतप्रेमसागरे कन्स उपद्रवकरणो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ 5॥

लेखकों से निवेदन

'धर्मायण' का अगला अंक वाल्मीकि-रामायण विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। वाल्मीकि रामायण सम्पूर्ण भारत में प्रचलित है, जिसके विभिन्न स्थानीय संस्करण हैं। सभी संस्करणों में कुछ न कुछ अंश परवर्ती कवियों के द्वारा जोड़े गये हैं। रामायण के विभिन्न संस्करणों के स्वरूप पर केन्द्रित यह अंक प्रस्तावित है। सन्दर्भ के साथ शोधपरक आलेखों का प्रकाशन किया जायेगा। अपना टंकित अथवा हस्तलिखित आलेख हमारे ईमेल mahavirmandir@gmail.com पर अथवा whatsApp. सं. +91 9334468400 पर भेज सकते हैं। प्रकाशित आलेखों के लिए पत्रिका की ओर से पत्र-पुष्प की भी व्यवस्था है।

साथ ही, यह अंक आपको कैसा लगा, इसपर भी आपकी प्रतिक्रिया आमन्त्रित है, जिससे प्रेरणा लेकर हम पत्रिका को और उन्नत बना सकें। अपनी प्रतिक्रिया उपर्युक्त पते पर भेज सकते हैं। डाक से भेजने हेतु पता है- सम्पादक, धर्मायण, महावीर मन्दिर, पटना जंक्शन के निकट, पटना, 800001

श्री कृष्ण-क्रान्ति

गंगा पीताम्बर शर्मा 'श्यामहृदय'

'कृष्ण' शब्द का ही अर्थ होता है- आकृष्ट करनेवाला। श्रीकृष्ण की अपरम्पार लीलाओं ने, रासेश्वर से योगेश्वर की क्रीड़ाओं ने सबका मन आकृष्ट किया है। जिसने देखा, उसीने उन्हें अपने अनुरूप पाया। अतः योगियों ने उनकी गीता को देखा तो कवियों ने उनकी बाललीला की कथाओं से अपनी वाणी को सुवासित किया। यह श्रीकृष्ण की क्रान्ति ही थी। मध्यकाल के कवियों की परम्परा में श्रीकृष्ण के वर्णन पर आधारित वयोवृद्ध लेखक की यह रचना धर्मायण की अंक संख्या 73 एवं 77 में पूर्व प्रकाशित है, जिसे प्रासंगिक जानकर पुनः संकलित किया जा रहा है।

श्रीकृष्ण-क्रान्ति धार्मिक न्यायी, सन्त कृपालु, सदाचारी, उदार तथा आस्तिकों के द्वारा विधर्मी, अन्यायी, असन्त, दुष्ट, दुराचारी, कृपण तथा नास्तिकों के प्रति चुनौती का अभियान है। यह सम्प्रदाय विशेष का धरोहर नहीं, मानवता का समूर्त्त स्वरूप है। मानव धर्म इसका विश्लेषण है। इसका प्रयोजन सम्यक् विधि से स्वयं जीना और दूसरों को भी सविधि जीवन जीने की कला और विज्ञान से अवगत होना है। अपनी आत्मा के समान दूसरे जीवों के प्रति बर्ताव बरतने का सुझाव है। श्रीकृष्ण का सांगोपांग जीवन अर्थात् प्राकट्य से गोलोक गमन-पर्यन्त क्रान्तिमय रहा है। श्रीकृष्ण-क्रान्ति कला और विज्ञान की सीमा पार करती है।

कहा जाता है-

जहाँ विजय होती औरों की तीरों और कमानो से।
वहाँ विजय नटवर की होती केवल मुरली की तानों से॥

कैसा था यह चमत्कार? साहित्यकारों के अनुसार रस नौ प्रकार के होते हैं। नौ रसों में शृंगार रस सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। पर वेदज्ञ- 'रसो वै सः' कह श्रीकृष्ण की ओर इंगित करते हैं। अद्भुत छटा, अद्भुत लावण्य, अद्भुत क्रिया कलाप।

श्रीकृष्ण क्रान्ति श्रीकृष्ण के प्राकट्य के साथ हुआ। प्राकट्य काल में अपने माता पिता को मथुराधीश कंस के कारागार में साँकल बँधे पाया। भाद्रमास की तमिस्रामयी घोर भयावनी रात और वर्षा का अपना उमड़ा तारुण्य, कृष्णाष्टमी कहलाने वाली तिथि का निशीथ काल, अर्थात सब कुछ कोरा विपरीत। उधर कलाधर भी अपनी कलाएँ सँजोकर प्राची दिशा के क्षितिज में अपने को छुपाए श्रीकृष्ण प्राकट्य की प्रथम झाँकी दर्शन की प्रतीक्षा में थे। वह मणिकांचन योग भी आया। भाद्रमास की कृष्णपक्ष

*खैरटिया, लौरिया, प. चम्पारण (बिहार)

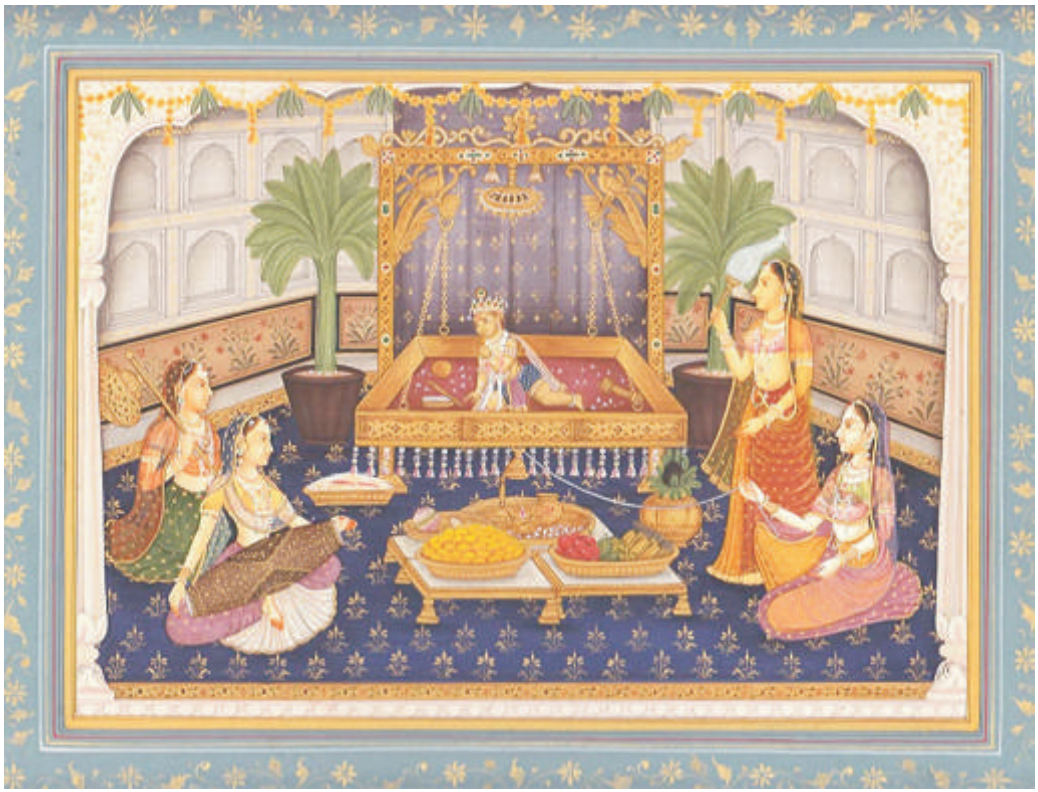

रोहिणी नक्षत्र अष्टमी तिथि निशीथ काल। प्राकट्य काल का हर्षोल्लास शोक समुद्र कैसे डूबोया जाय टेड़ी खीर था। भला एक महानतम क्रान्तिकारी कब तक निष्क्रिय बना रहते। अंग संचालन द्वारा इंगित किया- माता पिता के कर-पग लगे साँकल टूट पड़े। काराघर आप ही आप खुल गया। माता देवकी ने पति वसुदेव को उस नवजात शिशु को नन्दरानी यशोदा के पास पहुँचा देने का अनुरोध किया। महादुष्ट कंस के द्वारा मारे गये अपने छठे पुत्रों के शोक सन्ताप से बचने के लिए अन्तिम युक्ति थी। चहुँधा भयावह अर्थात् अथाह जलराशि, भयावनी रात और यमुना में बाढ़। क्रान्तिकारी भय नहीं जानते। जानते हैं अथक परिश्रम और प्रयास। फल की चिन्ता नहीं। वसुदेवजी सूप में नवजात शिशु को रख सर पर धारण किया। यमुनाजी ने चरणोदक लेकर जल थाह कर दिया। वसुदेवजी नन्दजी की गोद में रख उनकी नवजाता कन्या को लिए आये। कैसी थी यह माया! किसी ने कुछ नहीं जाना।

उधर वसुदेवजी की मार्ग सुगमता के हेतु शशांक ने धराधाम को श्री ज्योत्स्ना मण्डित कर नयनाभिराम के दर्शन कर मानस तृप्त हो आगे बढ़े। चोर न सहे इजोर। भला उस स्वयं प्रभु समुज्ज्वल के साम्राज्य में तमिस्रा का क्या राज। भागी भागी अभागी-सी कहीं खो गई। मानो अज्ञानता की घोर

तमिस्रा ज्ञानदीप के आलोक में लुप्त हो गई। निर्गुण ब्रह्म सगुण ब्रह्म रूप में प्रकट हुआ। उस महाविराट का क्षुद्र विराट् में प्रवेश कितना आश्चर्यमय है। नहीं जानती यशोमति कि उनके प्रसवगृह में अनजान शिशु पूर्णेन्दु की कमनीयता अभिमानी कन्दर्प की रमणीयता, अश्विनीकुमार की दिव्यता भरे अनन्त गुण सागर कमलनयन, कुंचित कुन्तल राशि अंक में अंग संचालन कर रहे हैं। अंग-स्पर्श से जागी; माया फिरी; देखा तो लगभग किशोर वयस, कुन्तल केश, मणि गुम्फित स्वर्ण मुकुट, भाल पर गोरोचन का आकर्षक अनुलेपन, ग्रीवा में कौस्तुभ मणि, कर्ण में मकराकृत कुण्डल, सुघड़ बाहु में बाजूदण्ड, गले में त्रिलरहार वनमाला, चर्तुभुज में शंख चक्र गदा और पद्म सुशोभित थे। भाद्र मास की भयावनी अर्द्धरात्रि में त्रिभुवन सुन्दर विश्वात्मा का पृथ्वी का भार उतारने के लिए विश्व शिरोमणि भारत के मथुरा ग्राम के कारा में अवतीर्ण हुए। बस, विस्मय, मधुर क्रान्ति।

एक दिन दुखिया निरापराध माता-पिता के करपद हथकड़ी बेड़ी लगी अवस्था में जो सुख ब्रह्मा-ब्रह्माणी, शिवा-शिव-रमा-रमापति एवं सिद्ध जनों को सुलभ नहीं, अभूतपूर्व सुख उस देवकी के नन्दन श्रीकृष्ण ने प्रदान किया। अकस्मात वह सुख मिला जो दोनों आँखों से अन्धे को दोनों आँखे मिल जाय। अपने पूर्वावतारों सहित उनकी कथाओं का स्मरण कराया। फिर नन्हें बालक पुत्र का प्रयोजन ही बतलाया गया है- "पुं नाम नरकत्राणार्थं पुत्रम्" कारा की यातनाएँ, दीनता की व्यथा तथा बुढ़ापे और चिररुग्नता ही 'पुं' नाम नरक है। प्राथमिकता दी माता पिता को कष्ट से निवृत्त कराया। संकेतानुसार वसुदेवजी ने उन्हें गोकुल पहुँचाया। शरीर की छाया के समान श्रीकृष्ण के साथ क्रान्ति अंगीभूत रहती। मथुरा का सुख सदन गोकुल आया और गोकुल की क्रान्ति मूर्ति माया मथुरा छायी। देवकी के छह पुत्रों का वध करनेवाला उस कन्या वध के प्रयास से कंस ताड़ गया, अब उसे मारनेवाला अवतार ले चुका है। श्रीकृष्ण ने अपने चर्तुभुज स्वरूप में अपने पिछले अवतारों का रहस्यों का भेदन करते हुए अपना नाम पृश्निगर्भ- उपेन्द्र बतलाया। अपने चतुर्भुजी स्वरूप में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करना क्रान्तिकारी विग्रह प्रमाणित हुआ। शंख दिक्-दिगन्त दहलाने और अम्बर भेदन करता हुआ अमरावती को थर्रानेवाला है। चक्र भी सुदर्शन चक्र नाम से विश्वविश्रुत है। श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र दानवों का विनाशक कहा गया है। गदा धारण तो वीरोचित आभूषण जैसा है। गदाहस्त हनुमानजी और भीम सदा सावधान और तत्पर पाए गये हैं। तथा पद्म अर्थात कमल कीच से उत्पन्न होकर अथाह जल राशि की भीत का भेदन करता हुआ ऊपर आकर खिलता है, जैसे घोर तमिस्रा का भेदन करती हुई रवि रश्मि या विश्व को आलोकित करती है। स्पष्टोक्ति है कि खल-लम्पट परिकर का मर्दन विनाश करते हुए सत्य की ओर गतिशील होना। शास्त्रकारों का भी कथन है- अग्रतः सत्य की ओर गतिशील होना। शास्त्रकारों का भी कथन है- **अग्रतः सकलं शास्त्रं पृष्ठतः सशरंधनुः** अर्थात् शस्त्र धारण मानवोचित ही है। अर्थात् श्रीकृष्ण का अवतार रहस्य श्रीकृष्ण क्रान्ति की ओर संकेत करता है।

श्रीकृष्ण क्रान्ति के दो प्रकार हैं, कोमल और कठोर। बाल्यकाल भी अनूठा ही रहा। फिर वही

छवि कान्ति लावण्य जो विश्वभावन कामदेव और अश्विनीकुमार में विद्यमान थे, ये सब श्रीकृष्ण में समाहित होकर दिनानुदिन निखरते गए। माता यशोदा के घर आँगन की छवि में चार चाँद लगानेवाले नवजात शिशु रूप में त्रिभुवन सुन्दर का समावेश। परिवार क्यों न इठलाए- इतराए। होनहार विरवान के होत चिकने पात। मन मोहनी वेष में अर्थात् काले काले घुँघराले बाल को मालती की जुड़ा माल से सवार, तरुणी मदमाती मत्तगयन्द चाल में अपने अनावृत स्तन में हलाहल का लेपन कर, नन्द रानी के प्रसूति-गृह में प्रवेश कर गई पूतना। शिशु श्रीकृष्ण ने पहचाना-प्रयोजन समझा। अपनी-अपनी गोटी, चाल जो हो। शिशु को उठा अपना स्तन धराया। बस, श्रीकृष्ण ने ऐसा चूस मारा कि प्राण पखेरू ही उड़ गए। अपने वास्तविक स्वरूप राक्षसी रूप में गिरी। पर वे कृपा परवश ने स्तन स्पर्श के नाते माता की गति प्रदान की। दूध पिलाने की चिर लालसा भी पूरी हुई। मुसकान मारते हुए अपनी कोमल क्रान्ति का सम्पादन किया ।

उधर शिलाखण्ड पर पटकते कन्या का हाथ से छुट जाना और अष्टभुजी दुर्गा स्वरूप का यह उद्घोष कि तेरा मारनेवाला कहीं पल रहा है, कंस सदा सशंकित और भयभीत रहता। पूतना वध से वह और भयभीत हुआ। भेजा श्रीधर पण्डित को कि हस्त रेखा देखने के बहाने अकेले पड़ने पर गला दबाकर मार डालेंगे। श्रीकृष्ण ने अंग संचालन किया, किलकारियाँ भरी। पण्डित ने गला दाबने के लिए हाथ उठाया, शिशु श्रीकृष्ण ने गला दबोच डाला। पण्डित यमधाम सिधारे। इस प्रकार बकासुर, शकटासुर तथा तृणावर्त के निधन का समाचार कंस को मिला। जातकर्म और नामकरण तो चोरी चोरी हुआ ही कि कहीं पापी कंस न जान जाय। 'अन्धेषु दीपः बधिरेषु गीतम्' का क्या प्रभाव, क्या ज्ञान? दन्तोद्भेदन के पश्चात् अपने ईश्वरत्व का आभास विप्र को दिया। माता यशोदा एक विप्र को भोज्य सामग्री देती हैं, वह भोग भगवान् को निवेदित करते हैं। बालकृष्ण भोग ग्रहण कर लेते हैं। बेचारा ब्राह्मण बालक का जूठा जान भोग नहीं लगाता। कुछ बार ऐसा ही हुआ। फिर वहीं बातें। माता ने कान पकड़ पूछा- ऐसी ढिढाई क्यों करते हो। उन्होंने कहा- "ये ब्राह्मण बार-बार मुझे ही अर्पण करते हैं, तो मैं क्या करूँ? त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' ब्राह्मण! क्या असत्य है?" ब्राह्मण ने स्वीकार किया, क्षमा माँगी। मिट्टी खाने के आरोप में मुँह खोल बाया गया तो अतिशय भ्रान्ति सी लगी। देखा गया- मुख में अनन्त पृथ्वी सूर्य चन्द्रमा, नवग्रह तारे, नदियाँ, पहाड़, जंगल, समुद्र आदि विद्यमान हैं। अनेक अन्य भ्रमित करनेवाले दृश्य हैं। इसका रहस्योद्भेदन यों हैं- किसी की बातों में पड़ आरोप लगाना छोटा जान अवज्ञा करना बुरा है। शक्ति कद और अवस्था में अर्न्तनिहित नहीं। यक्षराज के पुत्र नल कूबर और मणिग्रीव शाप वश यमलार्जुन वृक्ष बने थे, उनका उद्धार किया। सामाजिक दोष कुरीति अनीति परम्परा के उन्मूलन के प्रयास को क्रान्ति कहते हैं। यह सदा सर्वथा रचनात्मक होती है। उन्होंने न्यायसंगत अधिकार पर अतिक्रमण करना असह्य अनीति का

विरोध किया। मदान्ध का मान मर्दन किया। इसी चपेट में पड़े ब्रह्मा तथा इन्द्र का मद मर्दन किया। वकासुर, अघासुर, धेनुकासुर, प्रलम्बासुर चाणूर, मुष्टिक, कंस, कालयवन, शतधन्वा, जरासन्ध आदि का अन्त किया। शाल्व वध भी हुआ।

इसके अतिरिक्त पौण्ड्रक, दन्तवक्र, विन्दुरथ, रोमहर्षण, विल्बल, शिशुपाल वध हुआ। श्रीकृष्ण की सर्वविदित क्रान्तिजन्य घोषणा थी–

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

कोरी भागवत्ता तो उत्तरा के मृत पुत्रों में नव जीवन को संचार प्रकट हुई। श्रीकृष्ण का समष्टिवादी दृष्टिकोण उन्हें सर्वप्रिय बना दिया। पार्थपुत्र बभ्रुवाहन ने धोखे में पार्थ का सर उतार लिया। श्रीकृष्ण ने अनहोनी को होनी में बदल सर जोड़ दिया। धर्म की जय, अधर्म का नाश हो' का दृढ़संकल्प अन्त तक निवाहा। अन्याय अधर्मकृत संकल्प समुदाय के लिए कठोर क्रान्ति रही। कठोर राक्षसों के साथ कठोर क्रान्ति वध दण्ड तदन्तर चरितार्थ किया। कंस के साथ वही दण्ड संहिता बरती गई– उदाहरण श्लोक ये हैं–

अरक्षितारं हर्तारं विलोप्तारमनायकम्।
तं वै राजकलिं हन्युः प्रजाः सन्नह्य निर्घृणम्।।

अर्थात् जो राजा (लोकतंत्र का मुख्यमंत्री एवं प्रधानमंत्री) अपनी प्रजा रक्षा करने में असमर्थ हो, निरन्तर हत्याएँ हो रही हो, धन धर्म अरक्षित हो, मन मानी करता हो, उसे बिना दया दिखाए मारने में कोई दोष नहीं। राजनायक को हराना ही उनकी राजनीतिक हत्या है। पुनः वही संहिता कहती है–

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणी धनापह
क्षेत्रदारापहारी च षडेते आततायिनः।

अर्थात् आग लगाने वाले, विष पिलाने वाले हाथ से शस्त्र छीनने वाले धन हड़पने वाले खेत और पत्नी छीनने वाले आततायी कहलाते हैं:–

पुनश्च– **आततायिनां न वधे दोषाः** अर्थात् आततायी के वध करने में कोई दोष नहीं है। कौरवों में सभी आततायी ही थे, उपरोक्त सारे दोष भरे थे। अतएव सबका वध उपयुक्त कारणों से हुआ। त्रेता की संहिता श्रीराम के समय में भिन्न थी– उन्होंने कहा–

अनुज बधू भगिनी सुत नारी,
ये सब हैं कन्या सम चारी,
इन्हें कुदृष्टि विलोके जोई,
ताहि बधे कछु पाप न होई।

इन्हीं आरोपों पर बालि का वध हुआ। पत्नी अपहरण दोष पर रावण का वध हुआ। धन हड़पने से दुर्योधनादि का वध हुआ। महात्मा संबोधित होनेवाले भीष्म ने अनर्थ अनाचार अपनी आँखों देखा। दुराचारी के पक्षधर रहे तो बाण शय्या पर सोए रहे।

प्रिय पाठक, इस कठोर क्रान्ति से मधुराति मधुर क्रान्ति की ओर बढ़े। क्रान्ति का अर्थ या प्रयोजन अन्याय से न्याय, अधर्म से धर्म, प्रतिकूल्य से आनुकूल्य तथा विरोध से समर्थन का परिवर्तन होना ही क्रान्ति है। एक तो श्रीकृष्ण का अतिसी पुष्प–श्यामला सलोना स्वरूप, परम विमोहक लावण्य कैशोर्य की अद्‌भुत छटा का प्रस्फुटन, रोम रोम से छिटकती पंचशरोपम आभा अर्थात् पूर्णेन्दु सुन्दर श्री विग्रहा माता अनूप मातृत्व उपरनी के

अतिरिक्त वेल-बूटे लगे किनारियों की पीताम्बरी-परिशोभित श्याम-मुरली मनोहर नानाविध दिव्याभूषणों से अलंकृत त्रिभंगी स्वरूप। अनुपम नयन कटाक्ष-अर्थात चलचितवन, बंकिम भृकुटी, शुक नासिक, मृदुल इषत्हास, प्रसन्न मुद्रा, अरुणोपम अधरोष्ठ अर्थात् नखशिख कल्पनातीत साज सौरभ। यह रूप माधुरी मधुर क्रान्ति की प्रथम भूमिका रही। कुछ कहे सुने नयनाभिराम के प्रति अपने को खो कर जीवन समर्पण।

श्रीकृष्णक्रान्ति का द्वितीय अध्याय था मुसकान भरे- अधरों पर हरित बाँस की बाँसुरी का स्पर्श। वाँसुरी और वंशीधर एक दूजे के लिए बिक चुके थे। भला कौन कवि उस अन्योन्याश्रय सम्बन्ध की समीक्षा करे। इस प्रकार की क्रान्ति दर्शकों को भ्रान्ति में डालती गयी। सूफी महात्मा तो उन इतिवृत्तियों पर दीवाने हो झूमने लगे। आत्मविभोर सन्तों पर श्रीकृष्ण का कटाक्ष बाँकी पूरा किया। रहिमन ने अपनी सुधि खो ली। नयी सनक सवार हुई- खेत में, खलिहानों में, कुंज-निकुंज- वितानों में, विचरते चौगानों में, गुनगुनाते गानों में तथा कण्टकित-निष्कण्टकित पथ पर तानों में- बस एक धुन 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' अनवरत चलता रहता। बस, एक देव श्रीकृष्ण, एक शास्त्र देवकीपुत्रगीत, एक महामन्त्र 'हरे कृष्ण' और एक ही काम उनकी सेवा। निर्धनतम पूजारी की महानतम पूजा और श्रेयस्करतर फल उनकी सहज अनुकम्पा। वह मानस-पूजा। वह अविरल-भक्ति, **दूते चित्ते प्रहृष्टा गोविन्दाकारिता भगवति मन:स्थिरीकरणं भक्ति:।** बस- कोरा आत्मसात्। वह कन्हैया भी अपने प्राण समान प्रिय भक्त पर झलक देते, पर पलक खुलता नहीं। बेचारे भारतेन्दुजी से नहीं रहा गया। उद्गार साक्षात् हो ही गया। **इन मुसलमान हरिजन पै कोटि हिन्दु न वारिए।** अर्थात् इन मुस्लमान भक्त रहीम पर कोटि हिन्दु बलि-बलि जाय। **रहिमन** साहब ने श्रीकृष्ण की बाललीला के समय के परिधान का वर्णन यों किया। उन्होंने मनोवांछित ढंग से साक्षात्कार कर मनोवांच्छित ढंग से सजोया-

काछिनी काछे कलित मुरलीकर
पीत पिछौरी साल की,
बंक तिलक केशर कौ कीने
दुति मनो विधु बाल की।
आप मोल विन मोलनि डोलनि
बोलनि मदन गोपाल की,
'श्यामहृदय' अस हरिजन के शतवार
नमन प्रति पालन की।

अब देखिए **रसखान** को। एक रस का रसिक अपनी उपासना में कुशल होता है, पर जो सभी रसों का स्वामी जैसा रसखान ही कहलाए उनकी दक्षता का क्या उल्लेख! पर उनकी आत्मा रस-श्रेष्ठ शृंगार के देवता श्रीकृष्ण का बालस्वरूप अतिशय प्रिय रहा है। प्रियदर्शन छवि ले गोपीनाथ उनके अन्तरंग प्रदेश के अधिष्ठाता लगते हैं। मन-मन्दिर के भगवान् वहीं हैं। अपना सुनाने के लिए सूरदास के हाथ पकड़ रुक जाने का संकेत कर आगे बढ कहते हैं-

छूरि धरे अति शोभित श्याम जू
तैसी बनी सिर सुन्दर जोटी,
खेलत खात फिरे अँगना पद
पैननि बाजत पीरीक छोटी।
वा छवि को 'रसखान' विलोकत
आरत काम कलाविधि कोटी,
काग के भाग कहां कहिये हरि
हाथ से लै गयो माखन रोटी।।

जीवन की सार्थकता भजनानन्द में है। प्रत्येक योनि जन्मजात का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष लक्ष्य है। **रसखान** इस सन्दर्भ में अभिव्यक्त करते हैं:-

मानुस हौं तो वही रसखानि
बसौ व्रज गोकुल गांव के ग्वारन,
जौ पशु हौ तो कहा वसु मेरो
चरौ नित नन्द के धेनु मझारन।
पाहन हौं तो वही कौ जो
धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन,
जौं खग हौ तो बसेर करौ मिलि
कालिन्दी कूल कदम्ब के डारन।।

कैसा विमल भाव, कैसी पवित्र आत्मा, भक्ति रसामृत का कैसा अनुपम स्वाद। 'सर्वतो मधुरातिमधुरम्।', 'मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धव:' परिप्लुत चिन्तनधारा!!

श्रीमान् तानसाहब को ब्रजराज छोड़ अन्य कोई सुहाते नहीं। भला शिकंजी से शक्कर कैसे निकाल जाय। तानसाहब ने अपने व्रजराज नटराज को सजे-धजे हृदय की कर्णिका पर श्यामसुन्दर को प्रतिष्ठित किया, तो श्रीकृष्ण ने उन्हें अपनी आँख और पलकों के बीच रखा। दोनों प्रयत्नशील रहे- **'पायो नाम चार, चिन्तामणि उर करते न।**

त्रिभुवन सुन्दर श्रीकृष्ण के किशोर वयस का चित्ताकर्षक वर्णन किया। बड़े लचीले भाव से। लालित्य को मूर्त कर दिया।

वाह, वाह छैल छबीला, सब रंग में रंगीला,
बड़े चित्त का अड़िला, कहुँ देवतों में न्यारा है,
माल गले सोहे, नाक मोती सेत जो है
कान कुण्डल मन मोहे, लाल मुकुट हार धारे।
दुष्ट जन मारे, सब सन्त को उबारे,
ताज चित्र में निहारे, प्रेम प्रीति करन हारा है।
नन्दजू का प्यारा, जिन कंस को पछारा,
वह वृन्दावन वारा कृष्ण साहब हमारा है।

कैसी है वह अनुपम भक्ति, कितनी है भाव प्रगाढ़ता! यह कहना कठिन है कि श्रीकृष्ण-भक्ति-भागीरथी में कौन किस प्रकार निमज्जन कर रहे हैं। अविरल अजस्रधारा तो रुकती नहीं। बेचारे **नजीर** की भावधारा बेनजीर जैसे वावरी बन उसी ओर चल पड़ी। भावधारा की चंचल उर्मियाँ लोकोत्तरानन्द वर्षण करती गई। चकोर की ललचाई आँखें चन्द्रमा पर ही तो पड़ती है, तो फिर बेचारे **नजीर** भी और परवानों की भाँति शमाँ की ओर ढल पड़ते हैं। शमाँ श्री श्याम सुन्दर एक, अकेले और अनन्त परवाने समाहित होते गए। दैवी कृपापूर्ण चाकचिक्य से ओतप्रोत, ललित-ललाम शोभा-धाम, कोटिकन्दर्प- नयनाभिराम की ओर आत्मविभोर **नजीर** साहब चल पड़े। खड़े-खड़े उस त्रिभंगीरूप मनमोहन की झांकी दर्शन से अतृप्त आँखें तृप्त करते इंगित करते हुए उपालम्भ आरम्भ किया-

यारो सुना ये दधि के लुटैया का
बालपन को मधुपुरी के बसैया का
कालापन मोहन रूप नृत्य करैया का,
बालापन ऐसे बांसुरी के बजैया का
बालापन बन ग्लाल गौवें चरैया का
बालापन मैं क्या-क्या कहूँ कन्हैया का
बालापन सब मिल के यारो
कृष्ण मुरारी की जय बोलो, जय दधि चोर
गोपीनाथ बिहारी की बोलो,
जय तुम भी नजीर
कृष्ण मुरारी की जै बोलो।

भाव-भंगिमा का अन्त नही, श्रीकृष्ण- कृपा-सरोवर के कृति-कांवर ढोनेवाले रसिक भक्त **आदिल साहब** तो व्रजमोहन को भी मोह लिया, चितचोर का भी चित्त चुरा लिया। 'जात पात पूछे नहि कोई, हरि को भजे से हरि के होई।' 'लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गयी लाल।' देखिए, **आदिल साहब** की ढिठाई। अटपटी वाणी में 'रे, तुम और आप' में भेद क्या-अभिन्नता है। ऐसा लगता है- **आदिल** साहब ने अपनी प्रगाढ़ भक्तिभुलैया में भगवान को भ्रमित कर दिया है- चन्द्र-चन्द्रिका तथा रवि-रश्मि का सम्बन्ध भक्त और भगवान् में है। कमलदल- लोचन कहो या घपोचन कहो- पर्यायवाची जैसा एक अर्थ, एक आशय कहते हैं-

मुकुट की चटक लटक बिम्ब कुण्डल की,
भौंह की भटक नेकु अंखिन देखाउ रे।
ऐ रे वनवारी बलिहारी जाऊँ तेरी मेरी,
गैलकिन आउ नेकु गायन चराउ रे।।
आदिल सुजान रूप गुन के निधान कान्ह,
बांसुरी बजाय ताप तपन बुझाउ रे।
नन्द के किशोर चित चोर मोर पंखराई,
बंशी वारे सांवरे, पियोर इत आउरे।।

भक्ति के बल भगवान् को वश किए को भक्त कहा गया है- भगवान के वश में। पुनः

अपना मान भले टल जावे जन का मान न टलते देखा।

कैसी है उस कृपा-परवश की भक्त वत्सलता, यह भी है कोमल क्रान्ति की, प्रथम अवस्था। भक्त के हाथ बिके भगवान् दोनों में किसी को अपनी सुधि नहीं। अब तक **वाहिद** साहब टकटकी लगाए कदम्ब तले त्रिभंगी रूप से कमल-कोमल-कर में मुरली लिए 'कांधा', 'राधा' की टेर लगाए हुए है। मुसकान भरी चितवन तो अमोघ छू-मन्तर है। उसी पर **वाहिद साहब** काटों में उलझी-गुलाब की पंखुडियों के समान उलझ गये। इसे नयनसुख के लोभ में बावरापन भी कहा जा सकता है। कुछ गुनगुनाते कहते हैं।

सुन्दर सुजान पर मन्द मुसकान पर
बांसुरी की तान पर ठौरन ठगी रहे,
सुरित विशाल पर, कंचन की माल पर
खंजन की चाल पर, खौरन खगी रहे।
भौंह धनु मैन पर, लोने युग नैन पर
सुहद रस बैन पर, वाहिद पगी रहे,
चंचल वा तब पर सांवरे बदन पर
नन्द के नन्दन पर लगन लगी रहे।

क्या भगवान् भाव और प्रेम के भूखे और भिखारी है कि जो जैसे चाहे मनोवांछित स्वरूप से तृप्त-मानस हो जाय। नयनसुख के भण्डार का भण्डारी हो जाय। आश्चर्य और विस्मय! शायद पृथ्वी पर बोये गये भिन्न-भिन्न प्रभेदों के बीज अनुकूल तरु पाकर खट्टे, मीठे, कषाय, तिक्त तथा कड़वा हो जाते हैं। भगवान् भी भावना-भक्त हो जाते हैं। एक ही कृष्ण सखा, मित्र, माता पिता, शत्रु, योगी, यति, भक्त के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के दिखाई पड़ते हैं। इनमें आकर्षण, विकर्षण दोनों शक्तियाँ जुड़ी हुई है। एक ही व्यक्ति भी भिन्न-भिन्न व्यवहार या नाता से भिन्न-भिन्न दीखता है।

अब नफीस खलीली का जानिए- भिन्न भिन्न अंग, भिन्न भिन्न विशेषता-

कन्हैया की आँखे हिरण सी नशीली,
कन्हैया की शोखी कली सी रसीली।
कन्हैया की छवि दिल उड़ा देनेवाली,
कन्हैया की सूरत लुभ देने वाली।।

कारे खां का शब्दजाल श्रीनन्दलालजी को आक्रान्त

कर दिया है, निपटना दुष्कर है। झाँकीदर्शन के वर्णन में एक अद्‌भुत कला-कौशल के कुशल प्राणी है। विकलता विह्लता के संवेदना-सागर में डूबते उबरते हैं।

वृन्दावन कीरति विनोद कुंज कुंजन में,
आनन्द के कन्द लाल मूरति गोपाल की,
काली दह कारे पाताल पैठि नाग नाथ्यो,
केतकी के फूल तोरि लाए माल हार की।
परसत ही पूतना परम गति पाय गई
पलक ही पार परयो अजामिलवार को
छबि गुणा गान हार छाछ के उगाहनहार
आई न अहीर क्या हमारी बार बार की।

मौजदीन साहब तो विरह में व्याकुल वृन्दावन की गलियों में, कुंज-निकुंजों में, कन्हैया को ढूढ़ निकाला। इस आरोप पर कि भला फागुन में भी कोई ऐसे छुप-छुप कर तड़फाता है। इस आरोप की सफाई या साक्षात्कार और दण्ड था कारण बताता और-

मोहि गुलाल लाल विन तेरे भई है रैन अँधियारी
अँसुवन के अब रंग बने हैं नैन बनी पिचकारी।।
वृन्दावन के कुंज गलिन में ढूढत हारी
दैहो दरस मोहि अपनी मौज से ऐ हौं कृष्ण मुरारी।।

यदि मौजदीन साहब ने अवनी से अम्बर तक कुंकुम गुलाल भरे वायुमण्डल में फाल्गुनी त्योहार के उछाह में लाख बुलाने पर भी नहीं आने का आरोप लगाया, तो भला मकसूद साहब ने श्रावण भाद्रपद के इत-उत तैरते हुए कज्जली के पहाड़ समान काले-काले बादलों के बीच कौंधती हुए विद्युत् भरी काल की भयावनी रात से निर्भय करनेवाले श्यामले सलोने का रीमझिम मास के आनन्द से वंचित करने का आरोप लगाया, उन्हीं के न्यायालय में अभियुक्त प्रमाणित किया- श्यामले सलोने श्याम सुन्दर का पावस सुख छीनने का मुकदमा किया-

लगा भादो मुझे दुःख देने सारी
घटा चहुँ ओर झूक आई है सारे
भरी जल बल चढ़ी नदियों की
घोर सोख अब तक न आए पी हमारे।
घटा कारी अँधेरी नित डरावे
पिया बिना नींद विरहिन को न आवे,
अरे कागा, तू उड़ के जा विदेश
श्याम सलोने को लेकर संदेसा पावे।।

श्रावण मास की झमझमाती रसवन्ती और बसन्त की अर्द्धरात्रि अथवा निशीथ काल में कोकिल-काकली अर्थात् पी-पी का निरन्तर रटन किसी पति-वियोगाग्नि-विदग्धा विरहिणी के लिये दारुण अर्न्तव्यथा सताती है। इसी उद्‌दीपन की स्थिति में बेचारे अफसोस साहब को परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण के वियोग का अफसोस होता है। कर्त्ता अफसोस की, क्रिया अफसोस और कर्म को असन्तोष। कितना अनुपम मेल। कर्ता को छविकोष नन्दनन्दन नवल-किशोर की याद सतायी। उनका कथन है- मूक मधुर का स्वाद जितना है, पर व्यक्त नहीं कर सकता प्रेमिका का प्रेमी के प्रति विरह-संवेदना समूर्त कैसे हो। विरहीन की गति विरहीन जाने।

विरह में कल न परत पल
छिनहुँ व्याकुल सखियाँ सारी रहत,
निस दिन कृष्ण मिलन को
सखियाँ आश लगात ढाढ़ी रहत।
अफसोस पिया की नेह सुरतिया
निरखत नर ओ नारी रहत,
'श्यामहृदय' मधुसूदन स्वामी,
जो अपना सपना का कहत।।

आदमी वर्ण, जाति, धन, चाकचिक्य से महान् या बड़ा नहीं होता है, कर्म, गुण और आचार से बड़ा होता है। श्रीकृष्ण ने तो काले वर्ण के, कारा में जन्म लेकर शिशु से किशोर तक अपने अवतारवाद से जगत् को जगमगा दिया। दस हजार हाथी का बलवाला कंस ठिकाने लगा। काजी अशरफ महमूद

साहब सोच ही रहे हैं- 'हमारा कन्हैया तो इतना कठोर नहीं कि कोई उसे प्यार-प्रेम से बुलावे और वह नहीं आवे। अगर वह इधर नहीं आया, तो भादो में आएगा जरूर। भादो के कृष्णपक्ष की अष्टमी उसे बड़ी प्यारी है- आधा अन्धेरा, आधा उजेरा। भगवान् कृष्ण के दर्शन, स्पर्श, श्रवण, भाषण, सम्भाषण कल्पनातीत आनन्दवर्षक है। नानाविध घनीभूत कल्पना में मुग्ध है, झूम रहे हैं। मानस-मन्दिर में वह मनमोहन सस्मित-विग्रह में विराजमान हैं। मन-मोर थिरक-थिरककर नाच रहा है। कल्पना साकार हुई। मनोवांछित झांकी-दर्शन, कहा कितना उतावले होकर-

मेरे प्राण भुलावन आए, मेरे प्राण लुभावन आए।
अचल कमल कर मुरली अधर धर वंशी बजावे
आए हो हो, वंशी बजावन आए।
मेरे प्राण भुलावन आए मेरे प्राण लुभावन आए।।

अन्यान्य भक्ति-धनीभूत सन्तों में इन्शा वाजिद फरहत लतीफ हुसेन, सैयद कासिम अली, शे करीम वख्त, बुल्ले साह, दीन दरवेश, काजिम खालस, वहजन मंसूर, यकरंग कायम, निजामुद्दीन औलिया आदि हैं। सूफी सन्त मदीन निष्ठा से भिन्न है ही।

मुहम्मद जायसी का हृदय तो नवनीत के समान कोमल है और चन्द्र-ज्योत्स्ना-मण्डित धरा सा सुहावन मनभावन है। श्रीकृष्ण उनके प्राण हैं। ये सौन्दर्य शृंगार और प्रेमरस के अनोखे पारखी हैं। इन सरीखे सन्त मुसलमान या इनके वंशज सच्चे भारतनिष्ठ और कुशल नागरिक हैं। ऐसे ऐसे भागवत भारत के लिए गौरव की विभूतियाँ हैं। एक तो धर्मप्राण भारत देश और ऐसे सन्त भारत के चार चाँद हैं। इन्हीं की कोई वंशावली इन्हीं की परम्परा और संकल्पों के महलों को ध्वस्त कर रही है। कृष्ण पर समर्पित जीवन श्रीकृष्ण के रूप गुण, लावण्य पर विमोहित है, पूर्वजों का किया कराया किरकिरा कर रहे हैं। सच्ची भारतीयता के कोरे प्रतिकूल।

आज भी इन्हीं मुसलमानों की गूदरी के लाल प्राचार्य रसीद अब्दूल वाजिद का कहना है- मैं अपने आपको हिन्दु कहने में गर्व का अनुभव करता हूँ। वास्तव में भारतीय और हिन्दु शब्द एक दूसरे के पक्षर्याय है। हिन्दुत्व ही भारतीयता है। प्रत्येक भारतीय के लिए यहाँ की मूल चिन्तन धारा में समाहित होना राष्ट्रीय अस्मिता होगी। प्रत्येक भारतीय के लिए देश की मिट्टी के प्रति आदर का भाव होना चाहिए। उन्होंने कहा- कि पहले देश में सभी हिन्दु कहा जाता था किन्तु अज्ञानतावश इसका अर्थ संकुचित होने लगा। मैं आज भी अपने को हिन्दु कहने में गर्व का अनुभव करता हूँ।

***

कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपञ्जरान्ते अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते।।

हे कृष्ण! आप के चरणरूपी कमलों में मेरा मन रूपी राजहंस अभी ही प्रविष्ट हो जाये, क्योंकि प्राण छूटते समय तो कफ, पित्त और वायु के प्रभाव से गला बंद हो जायेगा, तो फिर आपका स्मरण कहाँ से हो पायेगा?

व्रज-क्षेत्र की कृष्णाष्टमी

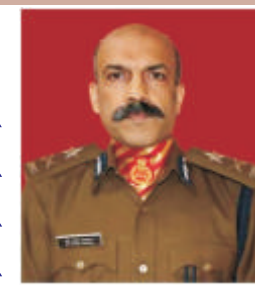

डॉ परेश सक्सेना*

यह श्रीकृष्ण का विराट् स्वरूप तथा पूर्ण साधारणीकरण है कि वे लोक में विभिन्न रूपों में पूजित हो गये हैं। उनके आविर्भाव-दिवस अर्थात् जन्माष्टमी को लोक ने विभिन्न रूपों में आत्मसात् कर लिया है। अतः कुछ स्थानों पर अष्टमीयुक्त मध्यरात्रि वाले दिन में व्रत रखा जाता है तो कहीं उसके अगले दिन जन्मोत्सव व्रत। कहीं जन्मकाल में ही पूजा होती है, तो कहीं छठी का उत्सव भी मनाया जाता है। यह उत्सव का विविध रूप श्रीकृष्ण के लोक-सरोकारी छवि का प्रतिबिम्ब है। इस आलेख में व्रज-क्षेत्र की जन्माष्टमी पर प्रकाश डाल रहे हैं- इसी संस्कृति में रचे-बसे लेखक डा. परेश सक्सेना।

श्रीकृष्ण-जन्मभूमि मथुरा में एवं उनकी बाललीला के क्षेत्र गोकुल, वृन्दावन (बृज भूमि), और उनके कर्म क्षेत्र, यानि महाभारतकालीन हस्तिनापुर (मेरठ), इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) और कुरुक्षेत्र (हरियाणा) उत्तर पश्चिम भारत में स्थित हैं। इन राज्यों में कृष्ण-भक्ति की परम्परा व्यापक और पुरातन है। लगभग हर घर में श्रीकृष्ण की छवि रहती है और बहुत से घरों में पीतल अथवा अन्य धातुओं से निर्मित 'लड्डू गोपाल' या 'कृष्ण-राधा-युगल' के विग्रह की पूजा होती है।

यहाँ जन्माष्टमी का पर्व बहुत धूमधाम के साथ मनाया जाता है। मूलतः यह व्रत भी है और श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव भी। उत्तर प्रदेश एवं केन्द्र सरकार में इस दिन सरकारी अवकाश घोषित होता है, जबकि बिहार के मिशनरी स्कूलों में इस दिन छुटटी नहीं होती है।

इस पारम्परिक त्यौहार में बच्चे विशेष रूप से भाग लेते हैं। गाँवों में महिलाएँ उपवास रखती हैं एवं अपने बच्चों को नई पारंपरिक पोशाक पहनाती हैं। छोटी-छोटी कन्याओं को गोपी की पोशाक-लहँगा-चुन्दरी तथा बालकों को कान्हा की पोशाक-पीताम्बर मोर मुकुट में सजा-सवाँरकर झाँकियाँ निकाली जाती हैं। सुबह से ही घर-घर में ढोलक की थाप पर कृष्णजन्म, बाललीला और झूले के गीतों का गायन किया जाता है। उदाहरण के लिए, खड़ी हिन्दी के लोकगीत **"यशोदा का नन्द लाल वृज का उजाला है।"** प्रसिद्ध है। एक अन्य स्थानीय भाषागीत प्रचलित है-

"फाटक बड़े री, चूड़ी खणे री,
खेतन में डोलन की डोल।
संग झूलें राधा संग झूलें कान्हा,
खेल खिलौने घर घर आए।

अर्थात् नंदराय जू के महल में बड़े बड़े द्वार की कड़ियाँ खोल दी गई हैं। खेतों में हिंडोले डोलने लगे हैं। युगल सरकार संग-संग झूल रहे हैं। भादों में घर घर नए खेल खिलोनों को ला कर उत्सव रचाया गया है।

*भा. पु. से., बिहार संवर्ग, सम्प्रति केन्द्रीय प्रतिनियुक्ति, गृह मंत्रालय, सशस्त्र सीमा बल, नई दिल्ली।

बृजभूमि में तो बृजभाषा के अनगिनत लोकगीत सुने जाते हैं। यहाँ के दो प्रसिद्ध लोकगीत हैं- **"नन्द के घर आनन्द भयो जय कन्हैया लाल की। हाथी दीन्ही, घोड़ा दीन्ही और दीन्ही पालकी"** जिसमें पुत्रजन्म के अवसर पर नन्द की प्रसन्नता और उदारता का चित्रण है। दूसरा लोकगीत में माता यशोदा की प्रसन्नता का वर्णन है-

जुग-जुग जीवे री जशोदा मैया तेरौ ललना।
धन्य घड़ी जब होये जशोदा मैया कहि-कहि बोलै,
नूपुर बाँध दौऊ चरनन में घुटवन-घुटवन डोले;
पकडें बाबा की अँगुरिया तेरो ललना।

इन गीतों की धुन पर महिलाएँ दूध, दही, गोंद, नारियल, पोस्त, बेसन, गुड़, आदि पदार्थो से पेड़ा, बरफी, कतरी, एवं पंजीरी जैसे पारंपरिक मिठाईयाँ तैयार करती हैं जिनका भोग मध्य रात्रि में श्री कृष्ण जन्म के समय लगाया जाता है।

घर-घर में संध्या से मध्य रात्रि तक भजन-कीर्तन का आयोजन किया जाता है। जिन घरों में ठाकुरजी प्रतिष्ठित है, वहाँ संध्या को उनका विशेष शृंगार होता है। विग्रह को नई पोषाक-आभूषणों से सजाते हैं। बच्चें मिट्टी के खिलौनों और फूल पत्तियों से श्री कृष्ण की झाँकियाँ बनाते हैं। बहुत से घरों में माता देवकी और भगवान श्रीकष्ण की सोने, चाँदी, ताँबा, पीतल, मिटट्ी की मूर्ति या चित्र पालने में स्थापित करते हैं तथा भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति को नए वस्त्र धारण कराते हैं साथ ही बाल-गोपाल की प्रतिमा को पालने में बिठाते है। हर घर में पञ्चामृत, तुलसी व गंगाजल से भगवान श्रीकृष्ण को अर्घ्य अर्पित करने के बाद प्रसाद से व्रत का समापन करते हैं। कई घरों में मध्य रात्रि को खीरा तोड़कर पीछे से ठाकुर जी का दर्शन किए जाने की लोकप्रथा है।

पूरे उत्तर पश्चिम भारत में सभी मंदिरों को, चाहे शिव-मंदिर ही क्यों न हों, रंग-बिरंगी लाईटों व फूलों से सजाया जाता है। मंदिरों में श्रीकृष्ण की स्थिर या चल झाँकियाँ सजाई जाती हैं तथा भगवान श्रीकृष्ण को झूला झूलाया जाता है। बृज की रासलीला मंडलियाँ प्रसिद्ध हैं, अस्तु यहाँ धनवान लोगों द्वारा रासलीला का विशाल आयोजन किया जाता है। बृज के सभी प्रमुख मंदिरों में श्रावण शुक्ल तृतीया हरियाली तीज से लेकर भाद्रपद कृष्ण जन्माष्टमी तक 'झूलन उत्सव' की परम्परा है। चाँदी-सोने के विशाल झूलों को पुष्पों से सजा कर भगवान को झूला झूलाया जाता है। लोकगीतों में झूला-गीतों की एक विधा ही बन गई है। नई दिल्ली के पंजाबी बाग में बहुत विशाल पैमाने पर जन्माष्टमी से एक सप्ताह पूर्व से लगातार श्रीकृष्णलीला का आयोजन होता है, जिसमें सरकारी गण्यमान्यों की उपस्थिति में लोग भारी संख्या में प्रसिद्ध कलाकारों के नाटक-भजन का आनन्द उठाते हैं। इसका समापन जन्माष्टमी पर होता है। पिछले वर्ष बिहार के प्रसिद्ध लोक गायक और सांसद श्री मनोज तिवारी ने भी अपने प्रस्तुति दी थी।

इस दिन मंदिरों के पट मध्य रात्रि तक खुले रहते हैं। मध्यरात्रि में (जन्म के समय) ठाकुरजी का पंचामृत से अभिषेक और षोडशोपचार पूजन किया जाता है। उपस्थित भक्तगण राधा-कृष्ण, वासुदेव, नन्द, देवकी, यशोदा माता, नारायण और लक्ष्मी आदि के नामों का उच्चारण करते रहते हैं। मध्यरात्रि में भगवान श्रीकृष्णजी की आरती के बाद रात्रि एक बजे प्रसाद पाया जाता है। उसीके बाद भगवान को शयन कक्ष में पधराया जाता है।

***

कृष्णाष्टमी की एक विशिष्ट परम्परा

श्री रामकिंकर उपाध्याय*

वंशीधरो विजयते रससारमूर्तिर्लीला मनोरमशुभा निखिला हि यस्य।
आगत्य वर्धितपुरं सुकलाश्च पुष्टाः वन्दे किशोरनटवेषमपारकीर्तिम् ॥१॥
क्रीडारतस्य परिशुद्धविनम्रबालैर्वेणुः पपात सहसा रजसि प्रलीनः।
अन्वेषणाय सकलान् तमनुप्रयातान् स्वप्ने ददर्श रमणीकमहं विनोदम्॥२॥

झारखण्ड राज्य के गिरिडीह जिला में पीरटाँड प्रखण्ड में मुख्यालय से 10 कि.मी. उत्तर में पालगंज नामक एक गाँव है, जहाँ भगवान् कृष्ण का प्राचीन मन्दिर अवस्थित है। मान्यता है कि औरंगजेब के समय में इस मन्दिर की मूर्ति तोड़ने के लिए मुगल सैनिक आये पर दैवी चमत्कार से इसे क्षति नहीं पहुँचा सके। इस मन्दिर में आज भी प्राचीन परम्परा के अनुसार कृष्णाष्टमी का पूजन चार दिनों का होता है।

प्रथम दिन– जन्माष्टमी का यह पर्व भाद्र कृष्ण षष्ठी तिथि से आरम्भ होता है। यह नियम का दिन कहलाता है। इस दिन भगवान् के विग्रह को राम–लक्ष्मण सीता एवं अन्य देवताओं के साथ पूरे भक्ति भाव से ढोल, झाल, मृदंग, शंख, घण्टा आदि बजाते हुए गर्भगृह से मुख्य पुजारी के घर लाया जाता है। वहाँ उन्हें विविध प्रकार के भोग लगाये जाते हैं। तथा वहीं पर भजन–कीर्तन का आयोजन होता है। मध्यरात्रि में पूरे उत्सव के साथ सभी मूर्तियों को गर्भगृह में स्थापित किया जाता है।

द्वितीय दिवस– यह जन्माष्टमी पर्व का संयम कहलाता है। इस दिन मुख्य पुजारी एवं अन्य वरिष्ठ परिवारजन उपवास रखते हैं। सन्ध्या के समय वंशरोपण होता है। इसमें स्वस्तिवाचन, कलशस्थापन, अखण्डदीप की स्थापना, पंचदेवता, नवग्रह, हनुमानजी आदि की पूजा होती है। इसके बाद प्रधान देवता श्रीकृष्ण सहित राधा की पूजा होती है। इसके बाद वंशवृद्धि एवं समाज कल्याण की कामना से जड़ के साथ बाँस का एक पौधा लगाया जाता है, जो सालों भर हरा–भरा रहता है। इस समय गाँव के सभी भक्त नियमित रूप से उपस्थित होते हैं। इसके बाद अखण्ड कीर्तन आरम्भ हो जाता है। इस कीर्तन में सात विशेष भजन परम्परागत रूप से आज भी आवश्यक माने जाते हैं–

1. **पायो नाम हरि हो, नामदेवा...**
2. **माधव जी, सकल सम्पदा दरश तुम्हारे...**
3. **आजु गोपाल पाहुना आये देखहु नयन आघायो जी...**
4. **हों जो गयी दधि बेचन व्रज में उल्टा आप बिकायो जी...**
5. **देखहु अद्भुत अविगत की गति, कैसो रूप धरै हरि हो...**

*शिक्षक, पालगंज, प्रखंड –पीरटांड़, जिला – गिरिडीह, झारखंड।

6. कहहिं बिदुरजी के घरनी...

7. श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए...

इसके बाद आरती होती है। नारदीय भजन का कार्यक्रम चलता रहता है। अलग अलग समय के लिए अलग अलग रागों में गीत गाये जाते हैं। सूरदास, तुलसीदास, लक्ष्मण एवं अन्य अनेक रचनाकारों के भजन यहाँ प्रचलित हैं।

तृतीय दिवस- यह श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के उपवास का दिन होता है। इस दिन गर्भगृह सहित मन्दिर परिसर को सजाया जाता है। इस दिन भगवान् का महास्नान होता है तथा वस्त्र बदले जाते हैं। सिंहासन को सुन्दर ढंग से सजाया जाता है। इस दिन प्रत्येक घंटा पर आरती होती है। सभी ग्रामवासी उपवास में रहते हैं। अपराह्ण में लगभग 3 बजे मन्दिर के शिखर पर ध्वजारोहण किया जाता है। रात्रि लगभग 9 बजे से जन्मोत्सव की तैयारी आरम्भ होती है। इसमें श्रीमद्भागवत की पुस्तक को विशेष रूप से समारोह के साथ लाया जाता है। मांगलिक स्तवन के बाद 10वें स्कन्ध के प्रथम से तृतीय अध्याय तक का पाठ होता है। द्वितीय अध्याय के समाप्त होते ही सभी लोग सावधान हो जाते हैं। हाथों में शंख, घंटा, फूल, माला, तुलसीमाला, तुलसीदल आदि लेकर सावधान होते हैं। तृतीय अध्याय के अष्टम श्लोक "निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने" इत्यादि श्लोक का पाठ होते ही पूरा मन्दिर, जयघोष, शंखनाद एवं वाद्ययन्त्रों से गूँज उठता है। फूल बरसाये जाते हैं। इस जयघोष के बीच ही तृतीय अध्याय का पाठ सम्पन्न हो जात है। इसके बाद सोहर गाये जाते हैं। समयानुसार श्रीकृष्ण के जन्म के बारे में आध्यात्मिक पक्ष पर प्रवचन होता है। इसके बाद आरती होती है।

अर्द्धरात्रि के बाद जन्मोत्सव की तैयारी होती है। मन्दिर के परिसर में कारागृह बनाया जाता है, चारों ओर प्रहरी तैनात किये जाते हैं। मुख्य पुजारी मन्दिर के गर्भगृह में जन्म से सम्बन्धित अनुष्ठान करते हैं, पुनः सूप में धान एवं अन्य सामग्री लेकर जाते हैं। इस अवसर पर मुख्य रूप से 3 भजन गाये जाते हैं-

1. हरि हो पीर भयो आज कम्पित गात..

2. होवहु दयाल प्रभु मेरो...

3. सब दुख दूर भेलै, सुख भेलै सांची...

इस समय विभिन्न प्रकार के अभिनयों के द्वारा दृश्य को सजीव बनाया जाता है। फिर कृष्णजन्म की घोषणा होती है। पुनः शंख, घंटे आदि बजाये जाते हैं, सोहर गाये जाते हैं। इसके बाद नवजात शिशु का दर्शन कराया कराया जाता है। जन्मोत्सव के बाद महाआरती होती है। नारदीय भजन में मंगल, चन्द्रकला और प्रभाती गायी जाती है। भजन का यह क्रम सूर्योदय तक चलता है।

चतुर्थ दिवस- इस दिन प्रातःकाल भगवान् की पूजा के बाद श्वेत वस्त्र पहनाया जाता है तथा 'दधिकादो' महोत्सव का आयोजन होता है। लोग एक दूसरे को दही और हल्दी का लेप लगाते हैं। इस दिन आंचलिक संगीत झूमर गाया जाता है। इसमें देवघर के भवप्रीतानन्द ओझा का झूमर बहुत प्रख्यात है। इसमें नृत्य, संगीत, अभिनय आदि का भी आयोजन होता है। बच्चे ग्वाल-बाल का रूप धारण करते हैं। राधा-कृष्ण के रास का आयोजन होता है, जिसमें बच्चे भाग लेते हैं। इस कार्यक्रम में मुख्यतः तीन पारम्परिक गीत हैं-

1. नित आबहु नित जाहु रे ग्वालिनि गोरस बेचन...

2. अहिरा निपट गवार वह बोले अच्छा अहीर।

3. कुंजदान मेरो दधि लीजै मेरो दधि नहीं पानी।।

इसके बाद सभी लोग दधिकादो खेलते हैं। फिर भजन गाते हुए मन्दिर से बाहर निकलते हैं। बाहर चौराहे पर सभी एक दूसरे से अंक-मिलन करते हैं एवं नाचते-गात हुए तालाब में स्नान करने जाते हैं। शाम में मन्दिर परिसर में बैठाकर लोगों को दाल-भात-सब्जी का भगवान् का प्रसाद खिलाया जाता है। इस प्रकार चार दिनों का यह पर्व सम्पन्न होता है। छठे दिन छठी भी मनायी जाती है। इस प्रकार यहाँ की कृष्णाष्टमी की परम्परा पर आधुनिकता हावी नहीं हो पायी है। भक्तगण पारम्परिक विधि से जन्माष्टमी मनाते हैं।

***

सन्त ब्रजवासी दास कृत 'ब्रजविलास' से श्रीकृष्णजन्म गीत

छन्द : **सर सिद्ध मुनिन्दा परम अनन्दा सुनि गोकुल हरि आये।**
दुन्दुभी बजावत मंगल गावत तियन सहित उहि धाये।।
विद्याधर किन्नर सुघर कण्ठबर करत गान सचुपाये।
गरजत तेंहि काला मधुर रसाला धन गति जनन जनाये।।
बाजत करताला बरषत माला सुर तर समम सहाये।
सब करैं कलोलैं हर्षित बोलें जै जै जै सुख पाये।।
नभ मँह धुनि होई सुन सब कोई भये सबम मन भाये।
सन्तन हितकारी असुर संहारी आवत क्षिति सुख छाये।।
शिव ब्रह्मादिक मुनि सनकादिक परम प्रफुल्लित गाता।
गुण गण सब गावैं प्रभुहि सुनावै आनंद उर न समाता।।
भागे गन चीते सब भय भीते प्रगटे दनुज निपाता।
अति गन हर्षे पुनि पुनि वर्षे सानुज सुरतरु जाता।।
सुरतिय मनमाही निरखि सिहाहीं यशुमतिके बड़भागा।
इन सम हम नाहीं पुण्यन माहीं कहैं सहित अनुरागा।।
योगी जेहि ध्यावहिं ध्यान न पावें करि करि योग बिरागा।
जो वेद न जानै नेति बखानै सो सुत है उर लागा।।

बिहार के लोकगीतों में

श्रीकृष्ण-भक्तिधारा

डॉ काशीनाथ मिश्र*

श्रीकृष्ण लोकजीवन में रचे-बसे देवता हैं। इनकी लीलाओं में समस्त काव्यरसों और भावों का जो साधारणीकरण हुआ है, वह विशिष्ट है। इसीलिए कविवर बिहारी ने भी कहा- लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गयी लाल। परिणामतः श्रीकृष्ण सभी प्रसंगों के लोकगीतों के आलम्बन बन जाते हैं। प्रतीत होता है कि जैसे रासेश्वर श्रीकृष्ण के चारों ओर लोकध्वनियाँ गोपियों के समान रास रचा रही हों। ऐसे ही कुछ लोकगीतों पर आधारित आलेख प्रस्तुत है।

गंगा की पीयूष धारा की तरह श्रीकृष्ण भक्ति की धारा लोकगीतों के माध्यम अविरल कल-कल, युगों-युगों से बहती आ रही है। भगवान् योगेश्वर श्रीकृष्ण का गायन से लगाव बाल्यकाल से ही रहा है। 'बाँसुरी' शब्द सुनते ही श्रीकृष्ण की वंशीधर-छवि का भान बरबस हो जाता है। उनकी लीलाओं को श्रीमत् शंकराचार्य, जयदेव, विद्यापति, सूर, तुलसी, मीरा एवं रसखान-जैसे साधक, स्वरों में ढाल, प्रभु के कृपापात्र बन गए। राधा-कृष्ण की लीलाओं का व्यापक वर्णन विभिन्न संस्थाओं के द्वारा मथुरा, वृंदावन से आगे बढ़ते हुए वैश्विक पटल पर होने लगा है। यही कारण है कि दूरदर्शन पर दिखाए गए श्री कृष्ण एवं महाभारत धारावाहिक के दर्शकों की संख्या विदेशों में भी बहुत बढ़ी है, लेकिन इस वैश्विक प्रसार से पूर्व राधाकृष्ण के अनन्य प्रेम का वर्णन ग्राम्य-संस्कृति के गायन में देखने को मिलता है। बिहार परिक्षेत्र के उत्सवों एवं संस्कारादि अवसर पर ललनाएँ गीतों के माध्यम से गाँवों की नीरवता को झंकृत करती है। सान्ध्य-आरती के समय ऐसे अवसर पर उन गीतों का श्रवण स्वर्गोपम आनन्द का अनुभव कराता है।

गीत-संगीत से मानव जीवन में प्रेरणा एवं प्राणशक्ति का संचार होता है और उसमें यदि भागवत भक्ति से सराबोर, राधा-कृष्ण की लीला का वर्णन संगीत के माध्यम से हो, तो सहज ही जीवन में आशा, संतोष एवं आनंद का भाव हिलोरे लेने लगते हैं। बिहार की ग्रामीण संस्कृति में जहाँ पढ़े-लिखे बड़े बुजुर्ग भजन-कीर्तन करते हैं, वहीं युवकों का अलग समूह होता है। उसी तरह गाँवों की ललनाएं अर्थात् हमारी बालिकाओं का अलग समूह एवं गीत-संगीत भी अलग होता है । हमारी माताएँ एवं बहनें वर्षभर के उत्सवों में गीत-संगीत से धर्माचरण करती हैं। बिहार के उत्सवों में गायन अनिवार्य है।

* उच्चतर माध्यमिक शिक्षक, 'विद्या भारती' अखिल भारतीय शिक्षण संस्थान, सरस्वती विद्या मंदिर, शास्त्रीनगर, मुंगेर।

विभिन्न उत्सवों पर विभिन्न प्रकार के गायन का विधान, कुलाचार एवं ग्रामाचार के अनुसार होता है। यहाँ हम कृष्ण-भक्ति से सम्बन्धित लोकप्रिय भजनों का रसास्वादन करेंगे बड़े भक्तिभाव से लोग श्रीमद् शंकराचार्य के इस संस्कृत भजन को गाते हैं-

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचंद्र भजे।।
अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम्।
इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं देवकीनन्दन नन्दजं संदधे।

अच्युताष्टकम्, स्तोत्र-रत्नावली, गीता प्रेस, पृष्ठ 180.

ऐसे ही गायन में प्रबुद्ध लोग जयदेव कृत राधाकृष्ण की अनन्य प्रेमकथा को भी बड़े भाव से गाते हैं। यथा-

पश्यति दिशि दिशि रहसि भवन्तम् तदधरमधुरमधूनि पिबन्तम्।।
नाथ हरे! सीदति राधा वासगृहे। ध्रुव पदम्।।
त्वदभिशरणरभसेन बलन्ती। पतति पदानि कियन्ति चलन्ती। नाथ हरे०

कहते हैं कि हे नाथ! हे हरि! राधा अपने आवास गृह मैं दुखी होकर आपको प्रत्येक दिशा में देख रही है। वह आपसे मिलने के उत्साह से उत्साहित प्रसाधन आदि से युक्त कुछ कदम चलती है फिर गिर जाती है।

महाकवि जयदेवकृत दशावतार-स्तुति भी लोग खासकर संस्कृत के विद्वान् लोग गाते हैं जिसमें उन्होंने श्रीकृष्ण को विष्णु के रूप में वर्णन किया है, एवं 10 अवतारों को श्रीकृष्ण का ही अवतार मानते हैं, अर्थात् श्रीकृष्ण दशावतार के अंतर्गत नहीं आते।

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम् विहितवहित्रचरित्रमखेदम्।
केशव धृत मीनशरीर जय जगदीश हरे।

बिहार में मिथिला में श्रीकृष्णभक्ति की बात हो, तो महाकवि विद्यापति का पद सहज ही मन में स्पन्दन करने लगता है। एक पद में महाकवि बहुत ही सुन्दर उपमा का सन्देश देते हैं कि श्रीकृष्ण की उपमा किसी से नहीं। यथा-

माधव कत तोर करब बड़ाई।
उपमा तोहर कहब ककरा हम कहितहु अधिक लजाई।
जौं श्रीखंड सौरभ अति दुर्लभ तौ पुनि काठ कठोरे।
जौ जगदीश निशाचर तौं पुनि एकहि पक्ष ईजोरे।

मनि समान आओरो नहि दोसर तनिकहु पाथर नामे।
कनक कदलि बहु लज्जित भय रहु, की कहु ठामक ठामें।
तोहर सरिस एक तोहे माधव मन होइछ अनुमाने।
सज्जन जन सओं नेह कठिन थिक कवि विद्यापति भाने।

विद्यापति पदावली, पद सं०-252

कवि कहते हैं कि चंदन दुर्लभ है उसमें सुगंध है लेकिन कठोर काट है। चंद्रमा प्रकाश देते हैं, लेकिन एक ही पक्ष ।मनी सुंदर एवं बहुमूल्य है फिर भी वह पत्थर है। स्वर्ण जैसा दिखने वाला केला अति छोटा और लज्जा बस अलग है अत: कृष्ण की उपमा कृष्ण से ही संभव है किसी और से नहीं।

महाकवि विद्यापति द्वारा रचित कई गीत महिलाएं विभिन्न अवसरों पर गाती हैं। विवाह अवसर पर गाए जाने वाले एक गीत जिसे गीत की विधा में श्बटगवनीश कहते हैं, इसमें श्री कृष्ण प्रेम का अनुपम उदाहरण है एवं बिहार की संस्कृति से जुड़ा हुआ है यथा-

कुंज भवन सओं निकसलि रे रोकल गिरधारी।
एकहि नगर बसु माधव रे जनु करि वटमारी।
छोड़ु श्याम मोर आँचर रे फाटक नव सारी।
अपयश होयत जगत भरि रे जनि करिय उघारी।
संगक सखि अगुआयली रे, हम एकसरिण नारी।
यामिनि आब तुलाएलि रे, एक रात अंन्हारी।
भनहि विद्यापति गाओल रे सुन गुनमति नारी।
हरिक संग किछु भय नहि रे, तोहे परम गमारी।

एक और बहुत ही लोकप्रिय पारम्परिक गीत जो बिहार के गाँवों में गाया जाता है, उसका अवलोकन करें-

कमल नयन मनमोहन रे, बसु यमुना के तीरे।
बसिया बजाए मन हरलक रे, चित रहै न थीरे।
खन मोहन वृंदावन रे, खन बंसी बजावे।
खन खन रहे अहीर संग रे, खन कानन धावे।
जओं हम जनितहुं एहन रे, तेजि जयता गोपाले।
अपन भरम हम तेजितहुं रे, सेवितहुं नंदलाले।
जों यदुपति नहि आओता रे, दह यमुना के तीरे।
हमहु मरब हरि हरि कय रे, छूटि जाएत पीरे।

-मिथिला संस्कार गीत, उर्वशी प्रकाशन, पद सं०282

आज जहाँ शिक्षित वर्गों में गायन एक अलग विधा है, शहर में रहकर शिक्षा प्राप्त करनेवाले विरले गायन से अभिरुचि रखते हैं या गाते हैं, लेकिन ग्रामीण जीवन बितानेवाली हमारी माताएँ एवं बहने संस्कारवश गीत गाने में दक्ष होती हैं, और इसका कारण विभिन्न उत्सवों पर कुलदेवी, देवता आदि के सामूहिक गीत गाने की परम्परा है। इन परम्पराओं में विधाओं का बहुत ही महत्त्व है। इससे भाव एवं लय का बोध होता है। श्रीकृष्णभक्ति से सम्बन्धित सभी गीतों को शामिल करना सम्भव नहीं है। उदाहरण स्वरूप गाए जाने वाले कुछ गीतों को प्रस्तुत करने का यहां प्रयास मात्र है।

एक पारम्परिक 'चैतावर' को देखें–

कृष्ण तेजल मधुबनमा हो रामा, कौन अवगुनमा।
यमुना तट वंशीवट पनघट, सेहो नहीं लागू सोहनमा। हो रामा ०
कौतुक हास विलास वृंदावन, सेहो सब भेल सपनवा। हो रामा०
जौ जनितहुं एहन होयत माधव, रखतहु अपना भवनमा। हो रामा०
सूरदास प्रभु तुम्हारे दरस को, कुब्जी हरल परनवा। हो रामा ०

मि०सं०गीत सं० 402

विवाह अवसर पर विरह व्यथा व्यक्त करने हेतु गाए जानेवाले भक्ति का स्वर्ग 'अवसर गीत' के रूप में द्रष्टव्य है–

सखी हे बिसरल मोहि मुरारी।
प्रथम आषाढ़ तेजल मोहि मोहन, कौन बिधि खेपब अन्हारी।
रिमझिम-रिमझिम सावन बरसय, बैसल सोच असारी। सखी हे०
मदन मेघ बूंद बरिसल भादव, हरी बिसरल गिरधारी।
आसीन कहय पुकारि हे उधो बिसरल मोहे मुरारी।
सखी हे बिसरल मोहि मुरारी।

मैथिली संस्कार गीत पद सं० 328

अपनी माता से सुनी एक और पारम्परिक करुन भावयुक्त गीत–

श्यामसुन्दर हे मुरलीधर, केहेन बिगरल तकदीर केलहुं।
अपने तिरलोकी नाथ भेलहु, हमरा बखरा में भीख देलहुं।
हम बालापनमे मित्र छलहु, संगहि संग लिखलहुं पढलहुं।
कोना पार होयब यमुनाजीमे, भारी संकटमे हम परलहु।

कृष्ण अष्टमी के अवसर पर गांव के मंदिरों में श्री कृष्ण की झांकी देखने को मिलते हैं। बड़े ही उमंग के साथ युवक युवतियां गीत-संगीत, भजन-कीर्तन करते रात भर जागकर भक्ति सुधा रस का

पान करते हैं। मंदिर भले भोलेनाथ का हो या बजरंगबली या फिर जगदंबा का ही हो, इस रात विशेष पूजन राधा कृष्ण का ही होता है। ऐसे अवसर पर श्री कृष्ण के रूप का वर्णन सुनने को मिलेंगे। मीरा के इस भजन को देखें –

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहनी मूरति सांवरी सूरति नैणा बने विसाल।
अधर सुधारस मुरली राजत, उर बैजंती माल।
छूद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल।

–भजन संग्रह (गीता प्रेस) पद सं० 535।

सूरदास के ऐसे ही पद को भी लोग बड़े ही भाव से गाते हैं।

अखियां हरि दर्शन की प्यासी देख्यौ
चाहत कमलनयन को, निशदिन राहत उदासी।
केसर तिलक मोतिन की माला वृंदावन के वासी।

– भजन संग्रह पद संख्या 206

बड़े बुजुर्गों के मुख से कबीर के निर्गुण एवं रसखानि के कृष्णभक्ति माधुरी का वर्णन सुनने को मिल जाएंगे। यथा–

जन्म तेरा बातों ही बीत गयो तूने कबहु ना कृष्ण कह्यो।
पांच बरस का भोला भाला अब तो बीस भयो।
मकर पचीसी माया कारण देश-विदेश गयो।

भजन संग्रह (गीता प्रेस) पद सं० 214

वहीं रसखानि कहते हैं

मानुष हौं तो वही रसखानि बसों ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु हौं कहा बसु मेरो चरौ नित नंद की धेनु मझारन।
पाहन हौं तो वहीं गिरी को धरयो कर छत्र पुरंदर धारण।
जो खग हौं तो बसेरों करो मिली कालिंदी कूल कदंब की डारन।

भजन संग्रह पद सं०735

कुछ भजन तो आपको परम आनंद का लाभ कराएंगे। गायन में प्रवीण लोग इस तरह के भी भजन गाते हैं –

तुम कहां छिपे भगवान करो मत देरी।
दुख हरो द्वारिकानाथ शरण में तेरी।
यहीं सुना है दीनबंधु तुम सब का दुख हर लेते।
जो निराश है उसकी झोली आशा से भर देते।
अगर सुदामा होता मैं तो द्वार द्वारिका आता।
पांव आंसुओं से धो कर मैं मन का प्यास बुझाता।
तुम बनो नहीं अनजान सुनो भगवान करो मत देरी। दुख०
जो भी शरण तुम्हारी आता उसको धीर बंधाते।
नहीं डूबने देते दाता नैया पार लगाते।
तुम ना सुनोगे तो मैं किसको अपनी व्यथा सुनाऊं।
द्वार तुम्हारा छोड़कर भगवन और कहां मैं जाऊं।
प्रभु कब से रहा पुकार मैं तेरे द्वार करो मत देरी।
दुख हरो द्वारकानाथ शरण में तेरी।

भोजपुरी भाषा में रचित कई भजन बहुत ही हैं कुछ भजनों का आनंद लें ।

जब से कन्हैया गेले, गोकुला विषारी दिहले,
आहे आहे उधो कोने रे जोगिनियां जोगवा साले हो राम।
पल नहीं एको क्षण कतहुं ना लागे मन।
आहे आहे उधो बिरहा से रतिया छतिया फाटे हो रामा।
प्रेम के पियासल अखियां, ताना मारे सारी सखियां,
आहे आहे उधो कोने रे करनमा पियवा बिसारे हो राम।
मधुबन तोरा बिना, लागे सारे सुना, सुना
आहे आहे उधो कोने रे सेबतिया मतिया मारल हो राम।
कहत महिंद्र मोरा कबहु ना तजिए कान्हा।
आहे आहे उधो राधे रे जोगनिया जोगवा साले हो राम।
आहे आहे०

और एक बहुत ही गाए जाने वाले गीत का अवलोकन करें

कान्हा कान्हा रटली बेचारी राधा प्यारी,
कईसन वियोग रोग दिहलै मुरारी।
फूल अइसन राधा रानी, गईली मुरझाई हो।

हाड़ हाड़ लौके देहिया, गईल बा सुखाई हो।
ई बैदा हेरान वा धराता ना बेमारी। कइसन ०
राम करस राधा वाला रोग तोहरा लागी हो।
तुहू कहीं पागल होके रटी राधा राधा हो।
अब तोहरा पाता चली प्रेम के बेमारी।
हो कइसन वियोग०

बिहार में सबसे ज्यादा नाम धुन प्रचलित है और इसका गायन भिन्न-भिन्न स्वरों में होता है। इसके दो स्वरूप होते हैं । एक तो साप्ताहिक दो-चार घंटे के लिए और दूसरा संकल्प के साथ नाम संकीर्तन के रूप में यह सामूहिक संकीर्तन, भजन श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, रामनवमी-जैसे अवसरों पर भी होता है। इस तरह के सामूहिक गायन के कुछ मंत्र एवं भजन इस तरह के होते हैं

1. श्री कृष्ण गोविंद हरे मुरारी हे नाथ नारायण वासुदेव।
2. हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
3. मुकुंद माधव गोविंद बोल, केशव माधव हरी हरी बोल।
4. गोविंद जय जय गोपाल जय जय, राधा रमण हरि गोविंद जय जय।
5. नटवर नागरनंदा भजो रे मन गोविंदा। श्याम सुंदर मुख चंदा भजो रे मन गोविंदा।

श्रीहरि अनंत हैं और उनके भक्त भी अनन्त हैं। दोनों का वर्णन लेखनी से सम्भव कहाँ! अन्त में उन्हींके वचनों का स्मरण कर उन्हींके शरण में चलें, जिनमें श्रीकृष्ण अर्जुन से गीता में कहते हैं

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

गीता अध्याय १८श्लोक ६६

हरिः ॐ तत्सत्।

आयाहि हृदयारण्यमसन्मतिकरेणुके।
आयाति याति गोविन्दभक्तिकण्ठीरवी यतः॥

अरी दुर्मति रूपी हथिनी! मेरे हृदयरूपी जंगल में तुम आओ न! क्योंकि यहाँ गोविन्द की भक्तिरूपी सिंहनी आती-जाती रहती है!!

-रोहिणीदत्त गोसांई

शिवतत्त्व

श्री अरुण कुमार उपाध्याय*

सनातन धर्म में ईश्वरवाद की परिकल्पना पर्याप्त गम्भीर है। इसमें व्यापकता है, गम्भीरता है, परिणामतः हम एक ही देवता को विवधरूपों में पाते हैं। इनके साकार रूप भलें एक-दूसरे से पृथक् हों पर सूक्ष्म और विभु रूप में अन्ततः वे सभी देव एक ही परम सत्ता को संकेतित करते हैं। भारतीय परम्परा सविकल्पक होती हुई भी इसी अर्थ में निर्विकल्पक है। यहाँ शिवतत्त्व के इसी व्यापक रूप पर विस्तृत आलेख प्रस्तुत है, जिसका प्रथम भाग पूर्व अक में प्रकाशित किया गया था, उसी क्रम में दूसरा अन्तिम भाग यहाँ प्रस्तुत है।

१४. आध्यात्मिक- आध्यात्मिक रूप में ५ कोष, मेरुदण्ड के ५ चक्र शिव के ५ मुख हैं। ५ वायु को भी शिव रूप कहा है। मस्तिष्क के भीतर वाम-दक्षिण २ भाग हैं जिनको २ सुपर्ण कहा गया है। इन २ हंसों के परस्पर सम्बन्ध (वार्ता) से १८ प्रकार की विद्या होती है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वावत्ति, अनश्नन्नन्यो अभिचाकषीति॥

(मुण्डक उप. ३/१/१, श्वेताश्वतर उप. ४/६, ऋक्, १/१६४/२०, अथर्व, ९/९/२०)

सुषुम्ना चेतना या ज्ञान का वृक्ष है। उसके मध्य (आज्ञाचक्र) में २ सुपर्ण (हंस, पक्षी) रहते हैं (परिषस्वजाते-पड़ोस में)। उनमें अन्य (एक) पिप्पल (पिब् + फल = जिस फल में आसक्ति हो) को स्वाद सहित खाता है। अन्य (दूसरा) बिना खाये (बिना आसक्ति = अनश्नन्) केवल देखभाल करता है।

समुन्मीलत् संवित्-कमल मकरन्दैक रसिकं भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरम्।
यदालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणतिः तदादत्ते दोषाद् गुणमखिलमद्भ्यः पय इव॥

(शंकराचार्य, सौन्दर्यलहरी, ३८)

संवित्-कमल को बाइबिल में ज्ञान का वृक्ष कहा है। मस्तिष्क में जो सूचनाओं का संग्रह है, वह अप् = जल है। उसके भीतर से क्रमबद्ध ज्ञान (जो वाक्य में लिखा जा सके) दूध जैसा उपयोगी है। यही मन के हंस द्वारा जल से दूध निकालना है। भौतिक रूप में मान सरोवर का हंस जल में दूध के मिश्रण से दूध नहीं निकाल सकता।

मस्तिष्क के वाम-दक्षिण दोनों भागों के २-२ भाग हैं। ये शिव के ४ मुख हुए-ईशान, तत्पुरुष, तत्पुरुष, सद्योजात। बीच का अघोर मुख है, जिसमें ये लय होते हैं, या जो इनका समन्वय करता है। आज्ञा के दोनों तरफ के भागों का परस्पर सम्बन्ध से ही १८ प्रकार की विद्या आती है (शिव के ४ मुखों का समन्वय-मालिनी विजयोत्तर तन्त्र, गोपीनाथ कविराज का-तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त, अध्याय १)

भ्रूमध्य के पीछे आज्ञा चक्र के ऊपर इडा-पिङ्गला-सुषुम्ना का मिलन त्रिकूट कहते हैं।

*भारतीय पुलिस सेवा (अ.प्रा.)सी./47, (हवाई अड्डा के निकट) पलासपल्ली, भुवनेश्वर।

इसी त्रिकूट या कैलास पर शिव-पार्वती (२ हंस रूप) के संवाद से सभी विद्याओं की उत्पत्ति हुयी है। शिव पार्वती के ज्ञानमय रूप को कई प्रकार से लिखा गया है-श्रद्धा-विश्वास, जिज्ञासा-अनुसन्धान, गुरु-शिष्य। भौतिक रूप में हिमालय (त्रिविष्टप् = स्वर्ग) का कैलास, काशी तथा दक्षिण का काञ्ची भी त्रिकूट पर हैं। काशी में इनको त्रिकण्टक (३ बाधा, दुर्ग) कहा गया है-गंगा, वरुणा, असि (कृत्रिम दुर्ग)। काशी का संकल्प है- गौरीमुखे त्रिकण्टकविराजिते अविमुक्त वाराणसीक्षेत्रे (शिवपुराण, कोटिरुद्र संहिता, अध्याय २२, देवीभागवत पुराण, ७/३८, ब्रह्माण्ड पुराण, २/३/६७/६२, मत्स्य पुराण, १८१, १८४/३३, लिङ्गपुराण, १/९२/१४२, स्कन्द-पुराण, ४/१/२६)। केवल काशी में निवास से मुक्ति नहीं होती है। इन भौतिक स्वरूपों से समझाया गया है कि आज्ञा चक्र तक स्वयं साधना से पहुंचते हैं। उसके बाद त्रिकूट (या शिव का त्रिशूल) पर स्थित शिव रूपी गुरु का आश्रय लेना पड़ता है।

१५. शिव लोक- त्र्यम्बक रूप में शिव के ३ धाम हैं-

क्रम	धाम	क्षेत्र	शिवरूप	जलरूप	त्रिलोकी
१	परम	संयती	परमेश्वर	रस-सरिः	सत्य-तप-जन
२	मध्यम	क्रन्दसी	सदाशिव	अप्-अम्भ	जन-मह-स्वः
३	अवम	रोदसी	रुद्र-शिव	महः	स्वः-भुवः-भू

लोकभाषा में रुदन तथा क्रन्दन के एक ही अर्थ है- मानसिक दुःख के साथ आंख से अश्रु तथा मुंह से शब्द निकलना। आकाश में इसका अर्थ है पिण्डों के भीतर ताप द्वारा तेज या प्रकाश का विकिरण या क्षरण।

ओं ब्रह्म ह वा इदमग्र आसीत्, स्वयं त्वेकमेव तदैक्षत- महद्वै यक्षं तदेकमेवास्मि, हन्ताहं मदेव मन्मात्रं द्वितीयं देवं निर्मम इति। तदभ्यश्राम्यत् अभ्यतपत् समतपत् तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य संतप्तस्य ललाटे स्नेहो यद् आर्द्र अजायत तेनानन्दत् तमब्रवीत् महद्वै यक्षं सुवेदमविदामह इति । (गोपथ ब्राह्मण, पूर्व, १/१/१)

तीन धाम- या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा। (ऋग्वेद१०/८१/४)

अन्य सन्दर्भ (११) मृत्युञ्जय प्रसंग में।

सूर्य के भीतर के ताप तथा श्रम से उसका तेज निकल कर फैलता है। वह रौद्र तेज होने के कारण उसका क्षेत्र रोदसी है। सूर्य से १०० व्यास दूर तक, रुद्र, १००० व्यास दूर तक शिव, लक्ष व्यास तक शिवतर, कोटि व्यास दूर तक शिवतम है। सौर-मण्डल के भीतर भू, भुवः (ग्रह-कक्षा) तथा स्वः लोक हैं। इनको अकृतक (विष्णु पुराण, २/७/१७) या वेद में मर्त्य कहा गया है-आकृष्णेन रजसा वर्तमानः निवेशयन् अमृतं मर्त्यं च (ऋक्, १/३५/२, वाज. सं ३३/४३)। मर्त्य होने के कारण इसका बिखरा पदार्थ मर्त्य रूपी जल मर है। अय अवम (निचला) धाम है।

यदरोदीत् (प्रजापतिः) तदनयोः (द्यावा-पृथिव्योः) रोदस्त्वम्। (तैत्तिरीय ब्राह्मण २/२/९/४)

(वाजसनेयी यजुर्वेद ११/४३,१२/१०७) इमे वै द्यावापृथिवी रोदसी। (शतपथ ब्राह्मण ६/४/४/२, ६/७/३/२, ७/३/१/३०) इमे (द्यावापृथिव्यौ) ह वाव रोदसी। (जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण १/३२/४)

द्यावापृथिवी वै रोदसी। (ऐतरेय ब्राह्मण २/४१)

एता वाऽ आपः स्वराजो यन्मरीचयः। (शतपथ ब्राह्मण ५/३/४/२१)

यः कपाले रसो लिप्त आसीत्ता मरीचयो ऽभवन्। (शतपथ ब्राह्मण ६/१/२/२)

स इमाँल्लोकनसृजत। अम्भो मरीचीर्मरमापोऽ- दोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः। (ऐतरेय उपनिषद् १/१/२)

ब्रह्माण्ड के भीतर १०० अरब सूर्यों का सम्मिलित रुदन क्रन्दन है-तथा यह क्षेत्र क्रन्दसी है। सौर मण्डल के बाहर रुद्र प्रभाव बहुत कम होने से यह सदाशिव है। यहां का फैला पदार्थ अप् है जिसमें शब्द (कम्पन) होने से यह अम्भ है। अम्भ के साथ मिलकर साम्ब-सदाशिव कहते हैं। यह मध्यम धाम है।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने

(ऋग्वेद, १०/१२१/६, वाजसनेयी यजुर्वेद, ३२/७, तैत्तिरीय संहिता, ४/१/८/५)

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते

(ऋग्वेद, २/१२/८)

द्यौर्वाऽअपां सदनं दिवि ह्यापः सन्नाः।

(शतपथ ब्राह्मण, ७/५/२/५६)

आपो ह वाऽ इदमग्रे सलिलमेवास। ता अकामयन्त कथं तु प्रजायेमहीति। (शतपथ ब्राह्मण, ११/१/६/१)

तद्यदब्रवीत् (ब्रह्म) आभिर्वा अहमिदं सर्वमाप्स्यामि यदिदं किंचेति तस्मादापोऽ- भवंस्तदपामप्त्वमाप्नोति वै स सर्वान् कामान्यान्कामयते। (गोपथ ब्राह्मण पूर्व १/२)

आपो वा अम्बयः। (कौषीतकि ब्राह्मण उपनिषद्, १२/२)

अयं वै लोकोऽम्भांसि (तैत्तिरीय ब्राह्मण, ३/८/१८/१)

अनन्त आकाश के दृश्य भाग (तपः लोक) में १०० अरब ब्रह्माण्ड हैं। यहाँ का तेज भाग सदा एक जैसा रहता है, अतः उसे संयती कहते हैं। इसका मूल रूप परम शिव है जिसके संकल्प से सृष्टि आरम्भ हुई। दृष्य-अदृश्य या पदार्थ-ऊर्जा रूप में इसका द्वैत शिव-शक्ति या अर्ध-नारीश्वर है। ब्रह्माण्डों के समूह रूप में यह परमेश्वर है। इसका मूल पदार्थ रस था, जिसमें ब्रह्माण्ड रूप तरंग के कारण यह सरि या सलिल हो गया।

यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः।

रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।

(तैत्तिरीय उपनिषद्, २/७)

वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानं सरिरस्य मध्ये। (वा. यजुर्वेद, १३/४२)

इमं साहस्रं शतधारमुत्सं व्यच्यमानं सरिरस्य मध्ये। (वा. यजुर्वेद, १३/४९)

वाग्वै सरिरं छन्दः। (शतपथ ब्राह्मण, ८/५/२/४)

त्रिलोकी- हर धाम में ३-३ लोक हैं। एक धाम का स्वः लोक अगले धाम का भू लोक हो जाते है, अतः ३ धामों में ७ लोक हैं।

१६. विश्वनाथ- लोकभाषा में विश्व तथा जगत् दोनों का अर्थ एक ही है। पर वेद तथा पुराण में इनमें कुछ अन्तर है। शिव को विश्वनाथ तथा विष्णु को जगन्नाथ कहते हैं। थोड़ा अन्तर विष्णु तथ जगन्नाथ में भी है। चण्डी पाठ के प्रथम अध्याय में जब तक भगवान् योगनिद्रा में सोये थे, तब तक उनको विष्णु कहा गया है, जाग्रत होने के बाद जगन्नाथ। विष्णु के प्रत्यक्ष रूप सूर्य हैं। वह आकर्षण द्वारा ग्रहों को अपनी कक्षा में बान्ध कर रखते हैं-वह विष्णु रूप है, वेष्टन करनेवाला। उनसे निकले इन्द्र रूपी तेज के कारण जो जीवन चल रहा है, वह जाग्रत या जगन्नाथ रूप है। यही विश्व तथा जगत् में अन्तर है। शाब्दिक अर्थों के अनुसार विश्व की परिभाषा है-जो सीमाबद्ध हो, प्रायः पूर्ण हो, तथा

संगठित वस्तु या एकत्व हो। विश्व की बाहरी सीमा जो दीखती है, वह लिंग है। जगत् क्रिया रूप तथा अव्यक्त है।

जगदव्यक्त मूर्तिना (गीता, ९/४) हेतुनानेन कौन्तेय जगद् विपरिवर्तते (परिवर्तन होता है) (गीता, ९/१)।

विश्व के १३ स्तर हैं, अतः १३ अंक के लिए विश्व शब्द का व्यवहार होता है। मनुष्य से ऊपर या बड़े विश्व के ५ पर्व, मनुष्य षष्ठ विश्व, तथा मनुष्य से क्रमशः १-१ लाख भाग छोटे ७ विश्व-कलिल (ब्मसस), जीव या परमाणु, कुण्डलिनी या परमाणु नाभि, जगत् कण (चर, स्थाणु, अनुपूर्व), देव-दानव, पितर, ऋषि।वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातरूपं वरेण्यं (अथर्वशिर उपनिषद् ५)

परिवेष्टित कलिल भी विश्व है-अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।

विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः ६ (श्वेताश्वतर उपनिषद्, ५/१३)

बालाग्र स्वयं मनुष्य का लक्ष भाग है, इसी अनुपात में छोटे विश्व के ७ स्तर-

वालाग्र शत साहस्रं तस्य भागस्य भागिनः।

तस्य भागस्य भागार्धं तत्क्षये तु निरञ्जनम्।। (ध्यानविन्दु उपनिषद्, ४)

ऋषि से पितर, पितर से देव-दानव, देव से जगत् (३ प्रकार के परमाणु कण- चर = Lepton, स्थाणु= Baryon, अनुपूर्व =Meson) हुए-

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितध्भ्यो देव दानवाः।

देवेभ्यश्च जगत्सर्व चरं स्थाण्वनुपूर्वशः।। (मनुस्मृति, ३/२०१)

बालाग्र का १०,००० भाग परमाणु का आकार है जो किसी रासायनिक क्रिया में नष्ट नहीं होता। इसे जीव कहा है जो किसी कल्प या निर्माण में नष्ट नहीं होता-

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।

भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।।

(श्वेताश्वतर उपनिषद्, ५/९)

कुण्डलिनी के २ आवरण क्रमशः १०-१० गुणा बड़े हैं। बाहरी आवरण बालाग्र का १कोटि भाग है। अतः केन्द्रीय भाग परमाणु की नाभि के बराबर है-

षट्चक्र निरूपण, ७- एतस्या मध्यदेशे विलसति परमाऽपूर्वा निर्वाण शक्तिः कोट्यादित्य प्रकाशां त्रिभुवन-जननी कोटि भागैक रूपा । केशाग्राति गुह्या निरवधि विलसत .. ।९। अत्रास्ते शिशु-सूर्यकला चन्द्रस्य षोडशी शुद्धा नीरज

सूक्ष्म-तन्तु शतधा भागैक रूपा परा ।७।

गीता के अध्याय ८ में संसार के ३ रूप कहे हैं- ब्रह्म, जो सब कुछ है-सर्वं खल्विदं ब्रह्म। कर्म अर्थात् दृश्य (शुक्ल) या आन्तरिक कृष्ण गति। यज्ञ अर्थात् चक्रीय क्रम में उत्पादक क्रम। ईशावास्योपनिषद् में इन तीनों को पूर्ण कहा है जो एक दूसरे के अंश हैं। ब्रह्म का क्रिया भाग कर्म, उसका उत्पादक भाग यज्ञ। प्रथम मन्त्र में भी इदं सर्वं ब्रह्म का दृश्य रूप विश्व है, जगत् क्रिया रूप है, जगत्यां जगत् चक्रीय क्रम में उत्पादक कर्म है। कुंए के ऊपर भी आधार के लिए जो चक्र रखते हैं, उसे जगत् कहा जाता है।

शान्तिपाठ-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

मन्त्र-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्यस्विद्धनम्।।१।।

यज्ञ-चक्र से जो बच गया उसका ही उपभोग करना चाहिये। अधिक उपभोग करने से यज्ञ बन्द हो

जायेगा।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरो वाच प्रजापतिः।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वो ऽस्त्विष्ट कामधुक्।।१०।। प्रसव = निर्माण, जन्म

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।

अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।।१६।।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः।।१३।। (गीता, अध्याय ३)

१७. वैद्यनाथ शिव– १२ ज्योतिर्लिंगों में एक वैद्यनाथ भी है। इसके २ स्थान कहे जाते हैं– एक महाराष्ट्र में परली–वैजनाथ, अन्य झारखण्ड के दुमका में वैद्यनाथ धाम। दुमका के निकट वैद्यनाथ धाम को चिता–भूमि भी कहते हैं। अतः यही वास्तविक वैद्यनाथ लगता है। कोई अमर नहीं है। जब सबसे बड़े वैद्य के पास जाने की स्थिति आ गयी, इसका अर्थ है कि जीवन बहुत कम रह गया। वेद में सामान्यतः आयुर्वेद को अथर्ववेद से सम्बन्धित मानते हैं। इसमें बहुत सी ओषधियों के वर्णन भी हैं। पर यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ही चिकित्सा सम्बन्धी शब्द हैं जो अन्य किसी वेद में नहीं हैं।

इष्षे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविघ्ता प्रार्पयतु आप्यायध्व मन्या इन्द्राय भागं प्रघ्जावघ्तीरनमीघ्वा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईषत माशँसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि (वा. यजु १/१)

आध्यात्मिक रूप से मेरुदण्ड मनुष्य शरीर की इषा है। उसकी सुषुम्ना में प्राण का प्रवाह वायु है जिसके ५ भेद हैं। सविता क्षेत्र मणिपूर है। इसे केन्द्रित कर योग तथा ध्यान करें तो आप्यायित अर्थात् स्वस्थ रहेंगे। अयक्ष्मा= यक्ष्मा रहित, अनमीवा= आज की भाषा में अमीवा के संक्रमण से दूर, अमाशय के पित्त आदि दोषों की शुद्धि। अघ= पाप कर्म से दूर रहना स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है। यज्ञ तथा पशु रूप गौ के सेवन से ही प्रजा की रक्षा और वृद्धि होगी।

कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखाओं में १२ शाखाओं को चरक कहते हैं। वे अभी लुप्त हैं, पर उनका सारांश चरक संहिताके रूप में उपलब्ध है, जो आयुर्वेद का मूल है। इसमें मन्त्र संग्रह के लिए ऋषियों की सभा का वर्णन है, तथा ऋषियों के वही नाम हैं, जिस तत्त्व की व्याख्या उन्होंने की है। कफ की व्याख्या करने वाला काप्य, वात के व्यख्याता वात–व्याधि तथा पित्त की व्याख्या करने वाला मरीचि (सूर्य किरण के असन्तुलन से पित्त होता है, ज्योतिष अनुसार षष्ठ भाव में सूर्य रहने से)।

वाजसनेयि यजुर्वेद के हर अध्याय में चिकित्सा से सम्बन्धित मन्त्र हैं। विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए अलग अलग यज्ञ हैं।

चिकित्सक के रूप में सभी वेदों में अश्विनीकुमार का वर्णन है। ये मनुष्य रूप में भी थे। आध्यात्मिक रूप में नासिका छिद्रों को अश्विन कहा है।

अश्विनौ वै देवानां भिषजौ

(ऐतरेय ब्राह्मण, १/१८, कौषीतकि ब्राह्मण, १८/१, तैत्तिरीय ब्राह्मण, १/७/३/५, गोपथ ब्राह्मण उत्तर, २/६, ५/१०)

नासिके अश्विनौ (शतपथ ब्राह्मण, १२/९/१/१४)

अश्विनावध्वर्यू (ऐतरेय ब्राह्मण, १/१८ आदि)

नासिका अश्विन से प्राणायाम द्वारा स्वस्थ रहते हैं। आन्तरिक तथा बाह्य यज्ञों में प्राण में अपान तथा अपान में प्राण के हवन द्वारा स्वस्थ रहते हैं।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।

प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायाम परायणः।।

अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति। (गीता ४/२९–३०)

शिव के मृत्युञ्जय रूप के बारे में (११) में लिखा जा चुका है।

वाजसनेयि संहिता के अध्याय १६ में शिव के वैद्य रूप में बहुत से नाम और कर्म हैं। सबसे पहले मन्त्र २ में कहा है कि रुद्र का शान्त रूप शिव ही पापनाशक तथा नीरोग रखने वाला है। अर्थात् मन की शान्ति प्रथम उपाय है, जिसके लिए योग के ८ स्तर हैं। अन्य मन्त्र हैं-

या ते रुद्र शिवा तनू अघोरा पापकाशिनी।।२।।

मा हिंसीः पुरुषं जगत्।।३।। (पुरुषों की हिंसा नहीं हो)

यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत्।।४।। (यक्ष्मा दूर कर मन को प्रसन्न करें)

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।।५।।(देवों के प्रथम भिषक्)

या ते हेतिमीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः।।११।। (आपका हेति या शस्त्र स्वस्थ करने वाला हो-Antibiotic)

मा नस्तोके मा न आयुषि।।१६।। (सन्तान सुरक्षित रहे, आयु बढ़े)।

व्याधिने अन्नानां पतये नमः।।१८।। (व्याधि पति को नमन)

ओषधीनां पतये नमः।।१९।।

निव्याधिन आव्याधीनां पतये नमः।।२०।। (व्यक्ति की व्याधि तथा समाज की व्याधि या महामारी के पति को नमन)।

काल रूप शिव संवत्सर के स्वरूप हैं। फाल्गुन मास में संवत्सर की अग्नि खाली होने लगती है, अतः उसे फाल्गुन मास कहते हैं। उसके बाद सूर्य विषुव रेखा से उत्तर आता है तब अग्नि बढ़ती है। नये संवत्सर के पूर्व अग्नि जलाते हैं। अग्नि बढ़ने से बाष्प रूप में जल उठता है, तथा कर्क राशि में सूर्य सबसे उत्तर होता है तब श्रावण मास में वर्षा आरम्भ होती है। कार्त्तिकेय के समय से वर्षा से ही संवत्सर आरम्भ होता था (१५८०० ईपू. में अभिजित् से उत्तरी ध्रुव हटा तब धनिष्ठा से वर्ष आरम्भ हुआ)। अतः संवत्सर को वर्ष कहा गया। आज भी मिथिला में श्रावण मास से वर्ष आरम्भ होता है। गणित के अनुसार दो विषुव संक्रान्ति, उत्तर या दक्षिण अयनान्त-किसी विदु से वर्ष आरम्भ हो सकता है।

इस समय रुद्र के शान्त होने का समय है। इस शिव रूप में जल चढ़ाते हैं। इसमे विपरीत फाल्गुन मास में अग्नि जलाते हैं।

यह वर्णन उत्तरी गोलार्ध के लिए है। यहां यह सन्देह हो सकता है कि ऋतु चक्र का यह वर्णन वर्तमान समय के लिए ही है। २६,००० वर्षों के अयन चक्र के कारण हर युग में श्रावण मास से वर्षा नहीं होगी। पर भारत में ३६० अंश तक अयनांश नहीं मानते हैं। सूर्यसिद्धान्त श्लोक (३/९) के अनुसार अयनांश शून्य से २७ अंश तक ही आगे पीछे जाता है। तब तक नये पञ्चाङ्ग की आवश्यकता नहीं होती। विक्रम संवत् काल में यह २७ अंश से बढ़ गया था अतः इसे पुनः शून्य कर नया संवत् चला। राशि चक्र को १ राशि पीछे हटा कर मास को भी १५ दिन पीछे हटाया, शुक्ल के बदले कृष्णपक्ष से मास आरम्भ हुआ। इस व्यवस्था को नहीं जानने के कारण वराहमिहिर तथा कालिदास के ज्योतिर्विदाभरण की गणनाओं में भ्रम होता है। पर यह स्वतन्त्र विषय है। शिवपूजा के दो रूपों के स्थायी होने का अर्थ है कि हर बार जब अयनांश २७ अंश से अधिक होने लगता था, पञ्चाङ्ग में संशोधन किया गया है।

***

समाप्त

अध्यात्म-रामायण से

राम-कथा

-आचार्य सीताराम चतुर्वेदी की लेखनी से
महावीर मन्दिर द्वारा प्रकाशित

(यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक (80 से 85 वर्ष की उम्र) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से अध्यात्म-रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं।)

सुन्दर-काण्ड

हनुमान ने समुद्र लाँघनेके लिये रामका स्मरण करके कहा कि मैं रामके अमोघ बाणके समान आकाश-मार्गसे जाकर आज ही सीताजीको देखे लेता हूँ। जिनका नाम-भर लेनेसे मनुष्य भवसागर पार हो जाता है, उनका दूत होकर, उनकी अंगूठी लिए हुए और उनका ध्यान करता हुआ यदि मैं इस तुच्छ समुद्रको लाँघ जाता हूँ तो कौन बड़ी बात है? यह कहकर हनुमान् अपनी बाँहें फैलाकर, पंछ और गरदन सीधी करके, पाँव समेटकर दक्षिण की ओर मुख करके करके उड़ चले।

हनुमान् की परीक्षा उसी समय उनके बल और बुद्धिकी परीक्षा करनेके लिये देवताओंने जिस नागमाता सुरसाको भेजा वह उनका मार्ग रोककर बोली- 'मुझे बड़ी भूख लगी हुई है, आकर मेरे मुख में प्रवेश कर जाओ!' हनुमानने कहा- 'मैं श्रीरामकी आज्ञासे सीताजीको देखने जा रहा हूँ। वहाँसे लौटकर और रामको कुशल समाचार सुनाकर तुम्हारे मुख में अवश्य प्रवेश कर जाऊँगा। मैं प्रणाम करता हूँ, मेरा मार्ग छोड़ दो। सुरसाने कहा- 'मुझे बड़ी भूख लगी है इसलिये एक बार मेरे मुँहमें आकर चले जाना।' फिर तो जैसे-जैसे सुरसा अपना मुंह खोलती रही वैसे-वैसे हनुमान् भी दुगुने होते चले गए। फिर जब उसने पचास योजन मुख फैला लिया तब हनुमान् अँगूठेके समान छोटेसे होकर उसके मुख में प्रवेश करके बाहर निकल आए और बोले कि मैं आपके मुख में होकर निकल आया हूँ, अब नमस्कार है। सुरसा बोली- 'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! जाओ, रामका कार्य सिद्ध कर आओ। तुम निश्चय ही सीताको देखकर रामसे जा मिलोगे।'

हनुमान लंकामें उधर सुरसा देवलोकको गई इधर हनुमान् आगे उड़ चले। उस समय मैनाक

पर्वतने जलसे ऊपर उठकर हनुमान्से कहा– 'मैं मैनाक पर्वत हूँ। आप यहाँ अमृत–तुल्य फल खाकर कुछ देर विश्राम करके जाइएगा।' हनुमान्ने कहा– 'रामका काम किए बिना मैं कैसे भोजन कर सकता हूँ? मुझे शीघ्र ही जाना भी है, इसलिये विश्राम भी मैं कैसे कर सकता हूँ?' यह कहकर हनुमान् केवल उसके शिखरको उँगलीसे छूकर आगे बढ़ चले। कुछ ही आगे सिंहिका नामकी एक छाया–ग्राहिणी राक्षसीने उन्हें पकड़ खींचा। हनुमान्को बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरी गति कौन रोके ले रहा है । किन्तु झट नीचे उस राक्षसीको देखकर हनुमानने जलमें कूदकर लातोंसे मार–मारकर उसका कचूमर निकाल डाला और वहाँसे उछलकर समुद्र के दक्षिण तटपर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने त्रिकूट पर्वतपर बसी हुई वह लंका नगरी देखी जो अनेक परकोटों और खाइयोंसे घिरी फैली हुई थी।

बहुत सोच–विचारकर वे रातके समय सूक्ष्म शरीर धारण करके लकाकी ओर जब चले तो द्वारपर ही लंकापुरी ही राक्षसीका रूप धारण किए हुए मिल गई। उसने हनुमानको डाँटकर पूछा– 'तू कौन है जो इस रात्रिके समय मुझ लंकिनीका अनादर करके चोरके समान बानर रूपसे नगर में घुसा चला आ रहा है।' यह कहकर उसने ज्यों ही हनुमान्को लात मारी कि हनुमान्ने उसे बाएँ हाथका ऐसा घूंसा जमाया कि वह रुधिर उगलती हुई धरतीपर जा गिरी। फिर उठकर उसने हनुमानसे कहा कि अब आपने लंकापुरी जीत ली। ब्रह्माने मुझसे पहले ही कह दिया था कि जब रामका वानर दूत रातके समय तेरे पास आकर तुझे घूँसा मारेगा और तू उसके प्रहारसे व्याकुल हो उठेगी तभी तू समझ लेना कि रावणके बुरे दिन आ गए। देखो, रावणके अन्त पुरकी अशोक वाटिकामें एक शीशमके वृक्षके नीचे भयंकर राक्षसियोंके पहरे में सीता रह रही हैं। उनका दर्शन करके तुम रामको उनका सारा समाचार जा सुनाओ।

जिस समय हनुमानने समुद्र लाँघा था उसी समय सीता और रावणकी बाईं भुजा और बाएँ नेत्र तथा रामके दाएँ अंग फड़कने लगे थे । लंकामें घुसकर हनुमान छोटेसे बनकर घूमने लगे। सारे राजमन्दिरोंमें ढुंढनेपर भी जब उन्हें सीता कहीं नहीं मिल पाई तब वे अशोक वाटिकामें जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने देखा कि एक बहुत ऊँचेसे देवालयके कुछ ही आगे एक घने शीशमके वृक्ष के नीचे अनेक राक्षसियोंसे घिरी सीता बैठी हुई हैं। उनके उलझे हुए केशोंकी एक लट बन गई है और वे धरतीपर पड़ी 'राम–राम' रट रही हैं।

वृक्षके पत्तोंमें छिपकर सीताका दर्शन करके हनुमान अपनेको धन्य समझने लगे। इतने में अन्त:पुरकी ओरसे बड़ा कोलाहल सुनाई पड़ने लगा। उन्होंने देखा कि दस मुख और बीस भुजाओंवाला रावण अनेक स्त्रियोंसे घिरा हुआ झपटा चला आ रहा है। रावणको सदा यही चिन्ता बनी रहती थी कि किस प्रकार रामके हाथों शीघ्रसे शीघ्र मेरी मृत्यु हो जाय। इस प्रकार ध्यान करते रहनेसे उस दिन रात्रिकी अन्तिम वेलामें उसने स्वप्न देखा कि रामका सन्देश लेकर कोई वानर वृक्षकी शाखापर बैठा देख रहा है। उसने मनमें सोचा कि कौन जाने यह स्वप्न ठीक ही हो, इसलिये मैं चलकर सीताको दुर्वचन कह–कहकर ऐसा दुखी करता हूँ कि वह वानर यह सब देखकर रामको सारी कथा जा सुना आवे । यह सोचकर वह तुरन्त सीताके पास जा पहुँचा, जिसे देखकर सीता अपना शरीर सिकोड़कर नीचे मुँह करके बैठ गई।

जब रावणने सीताको बहुत समझाया-बुझाया, डाँटा-फटकारा और भयत्रास दिखाया तब सीताने बीचमें तृण रखकर कहा- 'अरे नीच ! रामके डरसे ही तू भिक्षुकका रूप धारण करके मुझे उसी प्रकार हर लाया था जैसे कोई कुत्ता सूनी यज्ञशालासे हवि उठा लावे। घबरा मत, तुझे बहुत शीघ्र इसका फल मिलनेवाला है कि तू रामके बाणोंसे मरकर यमलोक चला जायगा और वे समद्रको सुखाकर यहाँ आकर तुझे कुल और सेनासहित मारकर मुझे अयोध्या ले जायेंगे।'

यह सुनकर जब वह सीताको मारनेके लिये तलवार लेकर झपटा, तब मन्दोदरीने उसका हाथ पकड़कर उसे ऐसा करनेसे रोक दिया। रावणने राक्षसियोंको आज्ञा दी कि तुम झटपट ऐसा उपाय करो कि सीता मेरे वशमें हो जाय । यदि दो महीने के भीतर यह मेरी बात नहीं मानती तो इसे मारकर मेरे लिये प्रात:कालका कलेवा बना देना।

त्रिजटाका स्वप्न यह कहकर रावण तो अपने अन्त:पुरको चला गया और राक्षसियाँ सीताको डराने-धमकाने लगीं। तब त्रिजटा नामकी एक राक्षसीने उन राक्षसियोंको रोकते हुए कहा कि तुम इन्हें डरा-धमकाओ मत, इन्हें प्रणाम करो। मैंने अभी स्वप्न देखा है कि राम और लक्ष्मण श्वेत ऐरावत हाथीपर चढ़े चले आए हैं और लंका जलाकर, रावणको मारकर, सीताको गोदमें लिए पर्वत-शिखरपर जा बैठे हैं। उधर रावण गले में मुंडमाला पहने, शरीरमें तेल लगाए, नंग-धडंग, अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ गोबरके कुंडमें डुबकी लगा रहा है और विभीषण भक्तिपूर्वक रामके चरणोंकी सेवा कर रहा है। अत:, राम इस रावणका कुल-सहित नाश करके विभीषणको लंकाका राजा बनाकर, सीताको गोदमें बैठाकर अपने नगरको लौट जायँगे। त्रिजटाके ये वचन सुनकर तो सारी राक्षसियाँ डरसे काँपती हुई चुपचाप जहाँ-तहाँ जा बैठी और पड़कर नींद लेने लगीं। सीता भी भयसे व्याकुल होकर प्राण देनेका निश्चय करके वृक्ष की शाखा पकड़े हुए फूट-फूटकर रोने लगीं।

हनुमान और सीताका सवाद इस प्रकार रोते हुए सीताने सोचा कि अपनी लंबी चोटीसे ही फाँसी लगाकर क्यों न प्राण त्याग दूं? उस समय हनुमान् ने धीरे-धीरे अबतककी सारी राम-कथा उन्हें कह सुनाई। यह सुनकर सीताको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने कहा कि मेरे कानोंको अमृतके समान प्रिय लगनेवाले ये वचन जिसने कहे हैं, वह मेरे सामने आ जाय। यह सुनकर हनुमान् उस वक्षसे उतरकर सीताके सामने आ खड़े हुए और एक छोटेसे कलविक (गौरैया) के बराबर नन्हेंसे वानर बनकर सीताके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गए। उनका यह रूप देखकर सीताको भय हुआ कि कहीं यह कोई मायावी ही तो वानरका रूप धारण करके नहीं चला आया है । यह देखकर हनुमानने कहा- 'आप शंका न कीजिए, मैं रामका दास, सुग्रीवका मंत्री और पवनका पुत्र हूँ।' इसपर सीताने पूछा कि वानर और मनुष्योंकी मित्रता भला कैसे हो पा सकती है? तब हनुमान्ने सुग्रीवसे मित्रतावाली सारी घटना सुनाकर उन्हें रामकी अंगूठी निकाल थमाई। उसे देखकर सीता उसे सिरसे लगाकर नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाती हुई कहने लगों कि तुम बड़े विद्वान् और रामके भक्त हो, तुमने मेरी दशा देख ही ली है, यह सब रामको जाकर बता देना जिससे वे मुझपर शीघ्र दया कर दें। अब तो दो ही मास मेरे प्राण रह पावेंगे। यदि इस बीच राम न आए तो यह दुष्ट रावण मुझे मारकर खा जायगा। तुम ऐसे ढंगसे रामसे यह सब

कहना कि वे शीघ्र ही रावणको मारकर मेरा उद्धार कर दें।

हनुमानने कहा कि जैसा मैं देख रहा हूँ उससे जान पड़ता है कि वे शीघ्र अस्त्र-शस्त्र लेकर रावणको मारकर आपको अयोध्या ले जायेंगे । जब सीताने पूछा कि वे वानर-सेनाके साथ समुद्र कैसे पार कर पावेंगे तब हनुमानने कहा कि राम-लक्ष्मण तो मेरे कंधेपर चढ़कर आ जायंगे और सुग्रीव सेना-सहित समुद्र पार करके चले आवेंगे। अब मुझे आज्ञा दीजिए और कोई पहचान दीजिए, जिससे रामको मेरा विश्वास हो जाय।

सीताने कुछ विचारकर अपने जूड़े मेंसे अपना चूडामणि निकालकर हनुमानको देते हुए कहा कि इसे दिखानेपर राम तुम्हारा विश्वास कर लेंगे। तुम उन्हें यह भी बता देना कि जब चित्रकूटपर राम मेरी मोदमें सिर रक्खे सो रहे थे, तब इन्द्रके पुत्र जयन्तने कौएके वेशमें चोंच मारकर मेरा अँगूठा फाड़ डाला था। उस समय मेरे पैरका घाव देखकर रामने एक तृण उठाकर ऐसा चलाया कि विश्व में कोई भी उसकी रक्षा नहीं कर सका। अन्त में वह रामकी ही शरण में आकर अपनी बाई आँख देकर चला गया। यह सुनकर हनुमानने कहा कि जब रामको आपके यहाँ होनेका पता चलेगा तो वे क्षण भरमें ही लंकाको भस्म कर डालेंगे। नन्हेंसे हनुमानको देखकर जानकी बोली- 'तुम इतने नन्हेंसे होकर राक्षसोंसे लड़ पाओगे? अन्य सब वानर भी तो तुम्हारे ही जैसे होंगे। यह सुनकर तो हनुमानने झट पर्वताकार रूप बना दिखाया। यह देखकर सीताको पूरा सन्तोष हो गया।

अशोक-वाटिकाका विध्वंस

अब तो हनुमानको बड़ी भूख लग आई । उन्होंने सीतासे कहा- अब तो मैं आपका दर्शन कर चुका। आप कहें तो सामने लगे हुए ये फल तोड़ खाऊँ । सीताकी स्वीकृति पाकर हनुमान फल खाकर उन्हें प्रणाम करके चल दिए । कुछ दूर जानेपर वे सोचने लगे कि जो दूत अपने स्वामीके कार्यके लिये आकर, उसमें किसी प्रकारका विघ्न न करनेवाला कोई और कार्य न करके यों ही लौट जाता है, वह अधम होता है-

कार्यार्थमागतो दूतः स्वामिकार्याविरोधतः।
अन्यत्किञ्चिदसम्पाद्य गच्छत्यधम एव सः॥

अतः, मुझे कुछ और भी कर दिखाना चाहिए और रावणसे मिलकर उससे बातचीत करके ही रामके पास लौटना चाहिए। बस उन्होंने क्षण-भरमें ही वह सारी अशोकवाटिका तहस-नहस कर डाली। राक्षसियोंने सीतासे पूछा कि यह वानर कौन है? सीताने कहा- 'मैं भला राक्षसोंकी माया क्या जानं? मैं क्या बताऊँ कौन है!' राक्षसियोंके मुँहसे अशोक-वाटिकाके विध्वंसकी बात सुनकर रावणने जितने सैनिक भेजे सबको हनुमानने अपनी गदासे क्षण-भरमें ही पीस डाला। अब तो रावण और भी क्रोधसे झुंझला उठा। उसने जो पाँच बड़े-बड़े सेनापति भेजे, उन्हें तो हनुमानने क्षण भरमें लोहेके खम्भेसे पीट-पीटकर चटनी बना ही डाला साथ ही राजकुमार अक्ष तथा उसकी सेनाको भी अपनी गदासे ढेर कर डाला। जब रावण स्वयं जानेको तैयार हुआ तब उसके पुत्र इन्द्रजित् (मेघनाद) ने कहा- 'ठहरिए, आप क्यों जाते हैं, मैं ही उसे ब्रह्मपाशमें बाँधे लाता हूँ।' उसके आते ही हनुमानने झट उसके सारथि, घोड़े और रथको चकनाचूर कर डाला। फिर दूसरे रथपर आकर इन्द्रजित्ने ब्रह्मपाशसे हनुमानको बाँध ही लिया और उन्हें रावणके पास ले जा पहुँचाया।

ब्रह्मपाशसे बँधे हुए हनुमान् जान-बूझकर बड़े डरे हए-से चले जा रहे थे और अनेक राक्षस उन्हें पीछेसे धूसोंसे मारते चले जा रहे थे। ब्रह्माके वरके कारण ब्रह्मास्त्र तो हनुमान्के शरीरका स्पर्श करते ही तत्काल चला गया था। यह जानकर भी हनूमान् रस्सियोंसे बंधे ही रहे और वैसे ही रावणके सामने ले जा पहुंचा दिए गए। जब पूछा गया कि तू कहाँसे आया है और तूने सारा वन क्यों उजाड़ डाला है, तब उन्होंने रावणसे कहा कि जैसे कुत्ता यज्ञशालामें घुसकर हवि चुरा ले जाय वैसे ही तुम भी अपने विनाशके लिये जिनकी पत्नी हर लाए हो मैं उन्हीं श्रीरामका दूत हैं। उन्होंने बालीको मारकर सुग्रीवको किष्किन्धाका राजा बना दिया है और अब वे अपने भाई लक्ष्मणके साथ प्रवर्षण पर्वतपर विराजमान हैं। जानकीजीको ढूंढने के लिये जो बड़े-बड़े वानर चारों ओर भेजे गए हैं उनमेंसे एक मैं वायुका पुत्र हनुमान हूँ। वानर-स्वभावसे मैंने तुम्हारा वन उजाड़ डाला और जो मुझे मारने आए उन्हें मैंने भी मार पछाड़ा। वहाँसे यह मेघनाद राक्षस ही मुझे ब्रह्मपाशमें बाँधकर लेता आया है। तुम पुलस्त्य-नन्दन विश्रवाके पुत्र और कुबेरके भाई हो इसलिये मेरी बात मानकर जाकर रामका भजन करो। यदि नहीं करते हो तो तुम्हारा ऐसा सर्वनाश हो जायगा कि तुम्हारे कुल में कोई नामलेवा-पानीदेवा तक नहीं बच रहेगा।

यह सुनकर तो रावण जल-भुनकर राख हो गया और बोला- 'अरे । अत्यन्त अधम वानर! तू मुझे समझता क्या है? सुग्रीव और राममें से मैं किसीको नहीं छोड़नेवाला हूँ, एक-एकको चुन-चुनकर मार डालूंगा। पहले तो मैं तुझे और जानकीको ठिकाने लगाए देता हूँ। फिर लक्ष्मणके साथ रामको और उससे पहले सुग्रीव और उसकी सेनाको नष्ट किए डालता हूँ।' इसपर हनुमानने गरजकर कहा- 'अरे अधम! तेरे जैसे करोड़ रावण भी मेरे सामने नहीं टिक पा सकते। जानता नहीं, मैं भगवान् रामका दास हूँ।' यह सुनते ही रावणने पास खड़े हुए एक राक्षससे कहा- 'इधर आओ तो! जाओ, अभी जाकर इस वानरकी बोटी-बोटी काट डालो।' ज्यों ही वह राक्षस आगे बढ़ा कि विभीषणने रोककर कहा- 'वानर दूतको कभी नहीं मारना चाहिए-

राजन् वधार्हो न भवेत् कथञ्चन
प्रतापयुक्तः परराजवानरः॥

यदि यह वानरदूत मारा गया तो रामको समाचार कौन जा सुनावेगा? अतः इसके लिये कोई ऐसा दण्ड निश्चित कीजिए जिसका चिह्न लेकर यह वानर जाकर सुग्रीव-सहित रामको यहाँ लिवाता लावे।' विभीषणकी बात रावणको ठीक ऊंची। वह कहने लगा- 'हाँ, ठीक है। वानरोंको अपनी पूंछ बड़ी प्यारी होती है। इसलिये इसकी पूँछमें कपड़े लपेटकर आग लगा दो और नगरमें चारों ओर घुमाकर छोड़ दो।' कहने भरकी देर थी। राक्षसोंने बातकी बातमें सनके पट्ट और तेलसे भीगे वस्त्र लपेटकर पूँछमें आग लगा दी और हनुमान्को मारते-पीटते हुए नगर में यह कहते हुए घुमाने लगे कि यह चोर है। हनुमान् चुपचाप सब सहन करते रहे। पश्चिम द्वारपर पहुंचते ही वे तुरन्त नन्हें से होकर उन बन्धनोंसे छूटकर झट उछलकर द्वारके कँगूरेपर जा चढ़े और देखते हनुमानने सीताके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके आज्ञा मांगकर जाते हुए कहा कि शीघ्र ही सुग्रीव आदि वानरोंके सहित भगवान् राम और लक्ष्मण यहाँ आ जायेंगे। जानकीने हनुमानसे कहा- 'तुम्हें देखकर तो मैं अपना सारा दुखड़ा भूल गई थी। अब तुम भी चले जा रहे हो। बताओ, रामका समाचार सुने बिना मैं कैसे जीवित रह पाऊँगी?'

हनुमानने कहा– 'यदि यही बात है तो आइए, मेरे कंधेपर चढ़ जाइए, मैं क्षण भरमें ही आपको श्रीरामके पास पहँचाए देता हूँ।' सीताने कहा– 'यह तो ठीक है, पर यदि समुद्रको सुखाकर या बाणोंसे उसे बांधकर, श्रीराम यहाँ वानरोंके साथ आकर रावणको मारकर मुझे ले जायँ, तभी उनकी अमर कीति होगी। इसलिये तुम जाओ, मैं जैसे–तैसे जी लँगी।'

सीतासे बिदा होकर हनुमान जिस पर्वतको पैरोंसे दबाकर उछले, वह पूराका पूरा पर्वत धरतीमें जा धंसा। हनुमानका गर्जन सुनते ही समुद्र–तटपर बैठे हुए अंगद आदि सब वानर हर्षसे नाच उठे और समझ गए कि ये रामका कार्य कर आए हैं। अब कोई तो उन्हें गले लगाए ले रहा है, कोई उनकी पूंछ चूमे ले रहा है और कोई उत्साहसे नाचने लग रहा है। तभी सबके सब हनुमानके साथ प्रवर्षण पर्वतकी ओर चल दिए। वे लोग मार्ग में पड़े हुए मधुवनमें घुसकर फल खाने, मधु पीने और वाटिका उजाड़ने लगे। अपने मामा दधिमुखसे यह समाचार पाकर सुग्रीव समझ गए कि वे लोग जानकीसे मिल आए हैं। तब सुग्रीवकी आज्ञासे के सब वानर राम और सुग्रीवके सामने पहुँचकर आकाशसे उतर पड़े।

हनुमानने राम और सुग्रीवको प्रणाम करके रामसे कहा कि मैं सीताको सकुशल देख आया हूँ। यह कहकर हनुमानने सीताके अपार दुःखका सारा वर्णन कर सुनाया कि वे दिन–रात आपका स्मरण करती हुई किसी–किसी प्रकार जीवन धारण किए हुए हैं। मेरे कहनेपर उन्होंने अपने जूड़ेमेंसे यह चूड़ामणि खोलकर देते हुए चित्रकूटपर जयन्तके साथ हुई घटना नेत्रोंमें जल भरकर सुनाते हुए कहा है कि रघुनाथजीसे कुशल कहना और लक्ष्मणजीसे मेरे कठोर वचनोंके लिये क्षमा मांगकर कहना कि यही चेष्टा करें जिससे श्रीराम कृपा करके शीघ्र मेरा उद्धार कर दें। मैंने उन्हें आपका भी सारा वृत्तान्त सुनाकर बहुत ढाढ़स बंधाया और उनसे बिदा लेकर यहाँ चला आया हूँ। आते समय मैंने रावणकी अशोक–वाटिका उजाड़ डाली, बहुत–से राक्षसोंको रगेद डाला, रावणके एक पुत्रको भी यमलोक पहुँचा दिया और रावणसे बात करके लंकाको सब ओरसे जलाकर झटपट यहाँ लौटा चला आया हूँ।

हनुमानके वचन सुनकर रामने प्रसन्न होकर कहा–तुमने जो करतब कर दिखाया है, वह तो देवता भी नहीं कर पा सकते। यह कहकर उन्होंने हनुमानको छातीसे चिपटा लगाया और गद्‌गद् होकर कहा– 'संसारमें मुझ परमात्माका आलिंगन अत्यन्त दुर्लभ है। अतः, हनुमान्! तुम मेरे परम भक्त और प्रिय हो

परिरम्भो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः।
अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुङ्गव॥

॥ सुन्दरकाण्ड पूर्ण॥

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

मातृभूमि-वंदना

(अथर्ववेद, काण्ड सं. 12, सूक्त सं. 1)

(पिछले अंक से क्रमशः)

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।

यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड॥47॥

हे हमारा मातृभूमि! जो तुम्हारा रस्ता ख्रजिसपर मनुष्य चलने फिरते हैं.- रथ और छकडों के चलने योग्य है, जिसपर भले और बुरे दोनों तरह के लोग चलते हैं, अन्न आदि पदार्थ जिस पर ढोये जाते हैं,वह मार्ग बिना शरु और चोररहित अर्थात् निर्भय और सुरक्षित कर हम विजयी है उस बाटपर चलें। जो हमारे लिये भलाई हो उससे हमें सुखी करो।।47।।

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद्भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।

वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय॥48॥

गुरु पदार्थ को अपनी ओर खींचने तथा धारण करने की शक्ति जिसमें है, भले और बुरे दोनों की जो धारण किये है, दोनों के मरण को जो सह ली है। अच्छा जल बरसानेवाले मेघ से युक्त सूर्य जिसकी पवित्रता को अपनी किरणों से हटा देता है, ऐसी हमारी मातभूमि विशेष प्रकार से सूर्य के साथ-साथ जाती है।।48।।

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति।

उलं वृकं पृथिवि दुछुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत्॥49॥

हे हमारी मातृभूमि! जो तुम्हारे हिंस्र जीव, शिकारी जानवर, चौपाये, भेंड़िये, पागल कुत्ते,भालू इत्यादि हैं, उन सबको हमसे दूर रखो।।49।।

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः।

पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तान् अस्मद्भूमे यावय॥50॥

हे हमारी मातृभूमि ! जो हिंसक, आलसी, निर्धन, परधन हरनेवाले,मांसाहारी, अनात्मवादी नास्तिक और आतताई हैं, उनको दूर करो।।50।।

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि।

यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान्॥

वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः॥51॥

जिस भूमि में सर्वदा आकाश में हंस इत्यादि आदि पखेरु आनन्द से उड़ते हैं, जहाँ धूलि को उडाते पेडों को उखाड़ते वायु बेरोक टोक सपाटे से बहती है और जंगल की अग्नि जहां जोरों से भभकती है, वह हमारी प्रिय मातृभूमि है।।51।।

(अगले अंक में जारी)

व्रत-पर्व

भाद्रपद, 2077

1. **बहुला पूजा, भाद्र कृष्ण चतुर्थी, दिनांक 7 अगस्त, 2020 ई.**
   बहुला चतुर्थी के दिन गौ माता की पूजा की जाती है। इस दिन गौ पूजन का महत्व सबसे अधिक है।
2. **कृष्णजन्माष्टमी, भाद्र कृष्ण अष्टमी, मोहरात्रि, जयन्ती व्रत, दि. 11 अगस्त, 2020 ई.**
   इस दिन अष्टमी 6-10 प्रात:काल से आरम्भ होकर अगले दिन 8.00 तक है। मध्यरात्रि मे अष्टमी होने के कारण इसी दिन कृष्णाष्टमी है। जो लोग कृष्णजन्म के दिन व्रत करते हैं, वे दिनांक 11 को व्रत करेंगे। कृष्णाष्टमी व्रत के सम्बन्ध में कहा गया है कि ''यदि जयन्ती (रोहिणीयुक्त अष्टमी) एक दिन वाली है, तो उसी दिन उपवास करना चाहिए, यदि जयन्ती न हो तो उपवास रोहिणी युक्त अष्टमी को होना चाहिए, यदि रोहिणी से युक्त दो दिन हों तो उपवास दूसरे दिन किया जाता है, यदि रोहिणी नक्षत्र न हो तो उपवास अर्धरात्रि में अवस्थित अष्टमी को होना चाहिए या यदि अष्टमी अर्धरात्रि में दो दिनों वाली हो या **यदि अधरात्रि में न हो तो उपवास दूसरे दिन किया जाना चाहिए।**'' (धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थ भाग, पृष्ठ संख्या- 55)
3. **कृष्णजन्मोत्सव, कृष्णदर्शन, पूजनोत्सव व्रत, दि. 12 अगस्त, 2020 ई.**
   जो लोग कृष्णजन्म के अगले दिन जन्मोत्सव का व्रत करते हैं, उनके लिए यह व्रत का दिन है।
4. **कुशी अमावस्या, भाद्र अमावस्या, दि. 19 अगस्त, 2020 ई.**
   देवकर्म एवं पितृकर्म के लिए कुश उखाड़ने का यह दिन मान्य है। मान्यता है कि इस दिन उखाड़ा गया कुश एक वर्ष तक बासी नहीं होता है।
5. **हरितालिका (तीज), भाद्र शुक्ल तृतीया, दि. 21 अगस्त, 2020 ई.**
6. **गणेश चतुर्थी, भाद्र शुक्ल चतुर्थी, दि. 22 अगस्त, 2020 ई.**
7. **चौठचन्द्र पर्व (मिथिला) भाद्र शुक्ल चतुर्थी (सायंकालिक), दि. 22 अगस्त, 2020 ई.**
8. **कर्माधर्मा एकादशी, भाद्र शुक्ल एकादशी, दि. 29 अगस्त, 2020 ई.**
9. **इन्द्रपूजा आरम्भ, भाद्र शुक्ल द्वादशी, दि. 30 अगस्त, 2020 ई.**
10. **अनन्तपूजा, भाद्र शुक्ल चतुर्दशी, दि. 1 सितम्बर, 2020 ई.**
11. **महालयारम्भ, पितृक्षीय पार्वण तर्पण आरम्भ, आश्विन प्रतिपदा (मध्याह्नकालिक), 2 सितम्बर, 2020 ई.**

रामावत संगत से जुड़िए

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य- **'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय'** इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी; किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं; अत: विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं; अत: सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा; किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अत: भक्तों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी; किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि ॐ-जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभाव: पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेता:।
यच्छ्रेय: स्यानिश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ (2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जों में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ इस http://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर क्लिक करना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

**

महावीर मन्दिर में श्रीकृष्णाष्टमी का आयोजन

(फाइल फोटो, 2018ई.)

महावीर मन्दिर में प्रत्येक वर्ष जन्माष्टमी का पर्व धूमधाम से मनाया जाता है। मन्दिर के प्रथम तल पर श्रीकृष्ण एवं अर्जुन के विग्रह के समक्ष यह आयोजन होता है। जिस रात्रि निशीथ में अष्टमी तिथि रहती है, उस रात्रि यह कार्यक्रम आरम्भ लगभग 9 बजे रात्रि में भगवान् श्रीकृष्ण से सम्बन्धित भजन-कीर्तन के साथ आरम्भ होता है। लगभग 2 घंटा तक भजन-कीर्तन चलता रहता है, जिसमें मन्दिर के गायक, वादक के साथ श्रद्धालुगण भी भाग लेते हैं। लगभग 11 बजे मन्दिर के पुरोहित तथा संस्कृत के विद्वान्गण भागवत-पाठ आरम्भ करते हैं। इस स्तोत्र पाठ में आचार्य किशोर कुणाल भी नियमित रूप से बैठकर गीता एवं अन्य स्तोत्रों का पाठ करते हैं। भागवत से वेदस्तुति का पाठ/गायन होता है। इसके बाद भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध द्वितीय एवं तृतीय अध्याय का पाठ होता है। द्वितीय अध्याय में श्रीकृष्ण के अवतार की पृष्ठभूमि की कथा है तथा नारद आदि मुनियों के द्वारा गर्भगत विष्णु की स्तुति का प्रसंग है। इसके बाद तीसरे अध्याय में जन्म के समय का वर्णन है। इस अध्याय का पाठ होने के साथ 12 बजे शंख ध्वनि, जयकारा, घंटा आदि के शब्द से मन्दिर का परिसर गूँज उठता है। उपस्थित श्रद्धालुगण बढ-चढकर भाग लेते हैं। इसी समय भव्य आरती होती है तथा गोविन्ददामोदरस्तोत्र, एवं अच्युताष्टक स्तोत्र का पाठ होता है। आरती के बाद सभी श्रद्धालुओं के बीच प्रसाद का बितरण होता है। मन्दिर में हर वर्ष शीतल प्रसाद विशेष रूप से बनता है तथा व्रज का पंजीरी प्रसाद भी रहता है। सभी उपस्थित श्रद्धालु भगवान् का प्रसाद पाकर अपने घरों को लौट जाते हैं। इस आयोजन में श्रद्धालुओं की पर्याप्त संख्या उपस्थित होती है।

पत्रिका पंजीयन सं. 52257/90

महावीर हृदय अस्पताल में चिकित्सा की विशेष व्यवस्थाके लिए लगाये गये आधुनिक उपकरण

श्री महावीर स्थान न्यास समिति, पटना द्वारा निःशुल्क ई-बुक के रूप में प्रकाशित